उससे दूर हो गया और अब अनन्त पथ से उसकी ओर करुणा की धारा प्रवाहित कर रहा है। (अर्थात् संसार में विधवा को कोई सुख नहीं, मृत पति की याद ही केवल उसे थोड़ी सान्त्वना प्रदान करती है।)

इसकी (विधवा की) आँखें करुणारस से पुलकित हैं, ध्यान से देखा तो पता चलता कि मनरूपी भ्रमर की पाँखें भीगी हुई हैं अर्थात् वह बेबस है। मधुर रस के आवेश में जो गुंजन सुनायी दिया वह और कुछ नहीं, बस, उसका हाहाकार मात्र था।

करुणा की उस सरिता के मलिन किनारे पर अपनी छोटी-सी कुटिया की शून्यता में और भी वृद्धि कर वह फटे और भीगे आंचल में मन, रुक्ष चेहरा, सूखे अधर और भयभीत चितवन को छिपाये, दुनियां की नजरों से अपने को बचाये, अस्पष्ट स्वर में रो रही है। उसका रुदन धीर आकाश और पवन सुन रहा है और ठहर-ठहर कर सरिता की छोटी लहरें भी सुन रही हैं।

उसको कौन धीरज दे सकता है ? उसके दुख का भार कौन अपने ऊपर ले सकता है ? यह दुख वैसा है जिसका कोई अन्त नहीं है। दैव, यह कैसा घोर और कठोर अत्याचार है। क्या तुमने कभी किसी के आंसू पोंछे हैं या सिर्फ सबको व्याकुल ही करते रहे ? पल्लवों से ओसकण की भांति जो अश्रु गिर गया, उसी से भारत का गौरव चला गया।

बादल-राग

आकाश के बादलों के बहाने कवि विप्लव का आह्वान करता है—

ऐ विप्लव के बादल ! अस्थिर सुख पर दुख की छाया के समान वायु के सागर पर तैर रही है तेरी यह रण-नौका ! वह संसार के जले हृदय पर निर्दय विप्लव की माया को प्रकट करते हुए बह रही है और आकांक्षाओं से भरी हुई है। पृथ्वी के हृदय में सोये अंकुर तुम्हारी गर्जना से सजग होकर नये जीवन की आशाएँ ले सिर ऊँचा किये हुए तुझे बार-बार देख रहे हैं। (वर्षा के आगमन से बीज अंकुरित हो उठे हैं।)

बार-बार गर्जना होती है, मूसलाधार वर्षा होती है। तेरा वज्रहुंकार सुन-सुनकर संसार हृदय थाम लेता है। वज्रपात से सैकड़ों ऊँचे वीर (बड़े-बड़े पेड़ या समाज का धनीवर्ग) भूमि पर सो गए हैं। गगन को छूने की स्पर्धा करने वाले उन वृक्षों का अचल शरीर छिन्न,भिन्न हो गया है, लेकिन खेत में लहराती अपार फसल के पौधे, जो छोटे-छोटे और हल्के हैं, हँस रहे हैं। बार-बार हिलकर और प्रसन्नता से खिलकर हाथ हिलाते हुए वे तुझे बुला रहे हैं। विप्लव की आवाज से छोटे ही शोभा पाते हैं (गरीब जनता का ही क्रांति से लाभ होता है और वही खुलकर उसका स्वागत करती है।)

हमेशा पंक पर ही जल की प्रलयकारिणी बाढ़ आती है, तुच्छ खिले हुए कमल से ही सदा जल छलकता है और शिशु का सुकुमार शरीर ही रोग-शोक में भी खिला रहता है।

खजाने भरे हुए हैं (शोषक धनी वर्ग के), किन्तु उन्हें संतोष नहीं। कामिनी के शरीर से लिपटे रहने पर भी वे धनी आतंक के मारे कांप रहे हैं और बादलों का गर्जन तथा वज्रपात का स्वर सुन कर भय से अपनी आंखों और चेहरे को छिपा रहे हैं। (क्रांति के आगमन से शोषकवर्ग बुरी तरह त्रस्त है।)

जीर्ण बाहु है और जर्जर शरीर है कृषकों का। हे विप्लव के वीर! तुझे वे ही अधीर होकर बुला रहे हैं। शोषकों ने उनका सब कुछ चूस लिया है, सिर्फ हड्डियों के ढांचे पर वे खड़े हैं। ऐ जीवन के महासमुद्र! उन्हें नया जीवन दो!

प्रथम रश्मि

सूर्योदय की बेला करीब है। पक्षी शावक जाग उठे हैं और उनकी चहचहाहट शुरू हो गई है। कवि चकित है कि कैसे इन्हें पता चल गया कि अब प्रभात हो गया है। वह पूछता है—

हे रंगिणी, तूने प्रभात की प्रथम किरण का आना कैसे जान लिया? अभी

तूने यह अपना जो मीठा गान शुरू कर दिया है वह तुझे हे बालविहंगिनी, कहां मिला ?

तू पंखों को समेटे सुखपूर्वक अपने स्वप्नों के घोंसले में सोयी हुई थी जिसके द्वार पर कितने ही जुगनू झूमते हुए घूम-घूमकर पहरा दे रहे थे। चन्द्रमा की किरणों से कामदेव के दूत उतर-उतर कर कलियों का सुन्दर मुख चूम रहे थे। और इस प्रकार उन्हें मुस्कुराना (खिलना) सिखा रहे थे। आकाश में तारों के दीपक स्नेहहीन हो चले थे और वृक्षों के पत्तों ने सांस लेना बंद कर दिया था। सब स्वप्नलोक में विचर रहे थे और अंधकार ने मण्डप-सा खड़ा कर दिया था।

ऐसे समय में हे तरुओं पर निवास करने वाली ! तू सहसा कूक उठी और किरणों के स्वागत का गान गाने लगी। हे दूसरों के अन्तर का रहस्य जानने वाली ! तुझको किसने उसके आगमन की सूचना दी ?

सृष्टि के अंधकार रूपी गर्भ से नाना प्रकार की छायाएँ तरह तरह के आकार ग्रहण कर रही थीं। ऐसा लगता था मानों दुष्ट प्रकृति के निशिचर जादू-टोने का प्रयोग कर किसी षड़यंत्र में लगे हों। रात्रि के श्रम से थक कर शशिबाला अपना मुख छिपाने का प्रयत्न कर रही थी। कमल की गोद में भ्रमर बंदी था, और वियोगी चकोर शोक के मारे पागल हो रहा था। सब की इन्द्रियां जैसे बेहोश पड़ी थीं, जगत में स्तब्धता व्याप्त थी और जड़-चेतन सब जैसे एक हो गये थे—निद्रा में अभिभूत प्राणी भी जड़ के समान हो गये थे। सूने संसार के हृदय में सिर्फ सांसों का आना-जाना जारी था। हे नाना रूप बदलने वाली ! तूने ही पहले पहल जागरण का गान गाया। हे आकाश में उड़ने वाली ! तुम्हारे ही कारण सर्वत्र श्री, सुख और सुगंध व्याप्त हो गये हैं।

मानों निराकार तम ही सहसा ज़्योतिपुंजों के रूप में साकार हो उठा और शीघ्र ही संसार में अनेक नाम और रूप धारण कर उतर आया। वृक्षों के झुंड पुलकित होकर सिहर उठे और सोया हुआ मलय समीर जाग कर अधीर हो गया। फूलों के अधरों पर हंसी दिखाई देने लगी और उन पर ओस-कणों के

मोती के से दाने हिल उठे। सब के पलक खुल गये (वे निद्रा से जाग गये), चारों ओर सुनहली आभा फैल गई, खुशबू हवा में फैलने लगी और भ्रमर इधर-उधर डोलने लगे। जगत ने स्पन्दन का अनुभव किया और नये जीवन का अपनाना सीखा। हे रंगिणी, तूने प्रभात की पहली किरण का आना कैसे जान लिया ? हे बाल-विहंगिनी, तूने यह स्वर्गीय गान कहाँ पाया ?

मौन निमंत्रण

सुनसान चाँदनी रात में जब संसार अबोध शिशु के समान चकित रहता है और लोगों के सुकुमार पलकों पर अज्ञात स्वप्न विचरते रहते हैं (अर्थात् निद्रित विश्व स्वप्नों के लोक में खोया रहता है), तब आकाश के नक्षत्रों के लोक से न जाने कौन मूक स्वर में मुझे निमंत्रण देता रहता है।

घने मेघों से आच्छादित आकाश जब डरावना हो उठता है और अंधेरे में भीषण गर्जन करने लगता है, हवा जब लम्बी साँसें लेने लगती है (उसकी गति तेज हो जाती है।) और वर्षा की धारा तेज होकर झरने लगती है, तब बिजली में चमक कर न जाने कौन मुझे मौन संकेत देता रहता है।

हरी-भरी धरती का यौवन-भार देख कर जब मधुमय बसंत गाने लगता है और वियोगी के हृदय के मधुर उद्गार की भाँति फूल भी उच्छ्वास के साथ खुल पड़ते हैं (खिलकर सौरभ फैलाने लगते हैं।), तब सौरभ के बहाने न जाने कौन मुझे मूक संदेशा भेजता है।

जल की क्षुब्ध लहरों को मथकर जब हवा सागर में फेन ही फेन कर देती है और इस प्रकार अज्ञात भाव से बुलबुलों के संसार को व्याकुल बना डालती है, तब लहरों से अपने हाथ उठाकर न जाने कौन मुझे बुलाता रहता है।

जब प्रभात की रश्मियाँ संसार को स्वर्णिम बना देती हैं, उसे सुख तथा शोभा प्रदान करती हैं औप पक्षीगण अपने मधुर गान से मानों धरती और आकाश को एक कर देते हैं, तब मेरे अलसाये पलकों को मौन भाव से न जाने कौन खोल देता है।

अमावस की घोर अंधेरी रात में जब अंधेरे के साथ एकाकार होकर सारा संसार ऊँघता रहता है और डरपोक झींगुरों की झनकार भरी आवाज तंद्रा को बार-बार भंग कर देती है, तब जुगुनुओं के समान न जाने कौन मुझे मौन रहकर रास्ता दिखाता रहता है।

जब सबरे की सुनहली छाया में कलियाँ अपने हृदय के द्वार को खोलती हैं और सुगंध से मतवाले भ्रमरों की बाल-सुलभ चीत्कार उनका गुंजन बन जाती है, तब ओस की बूंदों में ढुलक कर न जाने कौन मौन भाव से मेरी आँखों को बरबस अपनी तरफ खींच लेता है।

कामों के भारी बोझ से मुक्त होकर और दिन को सुनहला अंत (स्वर्णिम संध्या) देकर जब मैं बहुत ही थका हुआ अपने व्याकुल प्राणों को सूने बिस्तर पर शीतल करने लगा रहता हूं, तब न जाने कौन मूक भाव से स्वप्नों के सौन्दर्य में मुझे घुमाता रहता है।

हे ज्योतिर्मय, नहीं जानता कि तुम कौन हो ? मुझको अबोध और अज्ञानी समझकर तुम मुझे अनजानी राह दिखाते रहते हो और मेरी वंशी के छिद्रों में गान भर देते हो अर्थात् तुम्हारी प्रेरणा से मैं गाता रहता हूँ। हे मेरे सुख और दुख के मौन सहचर, मैं नहीं कह सकता कि तुम कौन हो !

कवि-किसान

किसान हल की फाल से खेत को जोतकर उसमें फसल उगाता है। कवि भी भावना-क्षेत्र का किसान है, मानवता का मंगल करना ही उसका काम है। इसी दृष्टि को सामने रख कर कवि कहता है—

हे कवि, अपनी प्रतिभा के फाल से निष्ठुर मानवो के हृदयों को जोतो। (अपनी रचना द्वारा लोंगों के हृदय की शुष्कता को नष्ट कर दो।) अत्यन्त पुराने अतीत की खाद डाल कर जनमानस की भूमि को बराबर कर दो और सुन्दर बना दो। (अतीत के आधार पर ही मानव के संस्कार बनते हैं।)

फिर जनता के मन में तुम अमर चेतना के नये बीज बोओ जिससे संसार

के जीवन-अंकुर हँस-हँस कर धरती को हरियाली से भर दें! (अर्थात् ऐसी चेतना तुम जन-मन में फूँक दो जिससे जीवन का विकास हो और सुख-समृद्धि बढ़े।)

हे कवि, धरती पर जितने अंधविश्वास-रूपी घास-पात उग आये हैं; उन्हें खोद कर अलग फेंक दो (क्योंकि उनसे फसल को हानि पहुँचती है।) और अपनी अमृतमयी वाणी की धारा से सिंचाई कर दो ताकि संसार उर्वर बने।

जन-जन को आनन्द प्रदान करनेवाली नवमानवता की सुनहली फसल सौंदर्य है, उसे ही काटो। तुम संसार की गृहिणी हो (तुम्हें संसार के भविष्य की चिंता रखनी है।) और जीवन के किसान हो, इसलिए जनजन की भलाई के भण्डार को प्रचुर मात्रा में भर दो!

गीत-विहग

मैं नयी मानवता का संदेश सुनाता हूँ और स्वाधीन देश की गौरवगाथा का गान करता हूँ। मैं मन की सीमा के परे जो मौन सत्य से प्रकाशित देश है, वहीं की ज्योति लेकर आता हूँ अर्थात् आध्यात्मिक सत्य की ज्योति लोगों के मन में जगाता हूँ।

बीते युगों के खंडहर पर सुनहली छाया डालकर मैं नये प्रभातकालीन गगन में उठकर मुस्काता हूँ। जब जन-मन की डालों पर जीवन का पतझड़ छा जाता है, तब मधुमास बनकर पल्लवों पर जीवन की लाली बिखेरता हूँ।

जनतारूपी महासागर जब आवेश से उद्वेलित हो उठता है तब मैं नये-नये सपनों की ऊँची लहरों का ज्वार उठाता हूँ और शिशिर के शीत से जब धरती का मन अरण्यरोदन करने लगता है तब मैं युग का कोकिल बन कर प्राणों की अग्नि वर्षा करता हूँ।

जो लोग मिट्टी के पैरों पर चलते हुए (भौतिकता में आस्था रखे हुए) सांसारिक पचड़ों से ऊब चुके हैं, उन्हें मैं स्वप्नों के चरणों पर चलना (आदर्शमयी जीवन व्यतीत करना) सिखलाता हूँ। जिनका हृदय ईर्ष्याक्रोधादिक के

तापों की छाया से कलुषित हो गया है उन्हें संकीर्णता की परिधि से बाहर लाकर उन्मुक्त प्रकृति का विशाल और सुन्दर हृदय दिखाता हूँ।

सोयी हुई बुद्धि के कारण मानवजीवन विभेदों से भर गया है, मैं उसे जगा कर आत्मिक एकता का पाठ पढ़ाता हूँ। अंधकार के कारण चलने में असमर्थ और जगत के वाह्य व्यापारों में बिखरी मन की शक्ति को एकत्र कर हृदय की सीढ़ियों के द्वारा उच्चता के शिखर की ओर ले जाता हूँ।

मृगजल के पीछे भटके हिरण की भाँति जो लोग आदर्शों के पीछे भटकते हुए दग्ध हो रहे हैं, उन्हें आकाश गंगा के समान मुस्कानों से आलोकित हृदय की राह बताता हूँ। जनजन को नयी मानवता की दिशा में जगा-जगाकर मैं मुक्तकंठ से जीवन-संग्राम का शंख बजाता हूँ।

मैं गीतरूपी विहग हूँ और अपने नश्वर घोंसले से उड़कर चेतना के मुक्त गगन में मन के पंखों को फैलाता हूँ। मैं अपने हृदय का प्रकाश बरसा कर जीवन के अंधकार को नहलाकर स्वर्णिम बना देता हूँ।

मैं अपने स्वर-रूपी दूतों को अपने मनोभावों में बाँधकर नित्य उनको जन-जीवन का अंग बनाता हूँ। (जिनका जन-जीवन से कोई सम्बंध नहीं, ऐसे गीत मैं नहीं गाता।) मैं मानव को प्यार करता हूँ, जनता की धरती पर ही भूस्वर्ग का निर्माण कर मैं देवताओं का वैभव लुटाता हूँ।

मैं जन्म-मृत्यु के द्वारों से मुक्त कर मानव को अमरता का पद प्रदान करता हूँ। मैं दिव्य चेतना का संदेश सुनाता हूँ, और स्वाधीन भूमि के नवजागरण के गीत गाता हूँ।

परिचय

मैं दुख के जल से भरी हुई बदली हूँ।

मेरा हृदय यद्यपि स्पन्दित होता रहता है फिर भी मैं जड़ के समान हो गई हूँ। (बादल भी हिलते-डुलते रहते हैं किन्तु वे वस्तुत जड़ हैं) मैं जब रोती हूँ तो संसार हंसता है। (बादल के बरसने पर भी संसार आनन्द का अनुभव

करता है।) बादलों में जैसे विद्युत चमकती रहती है वैसे ही मेरे नैनों में भी दीपक-से कुछ जलते रहते हैं और पलकों में अश्रु की निर्झरिणी मचलती रहती है—आँसू उमड़ते रहते हैं। (वर्षा होने पर निर्झर के स्रोत का फूट निकलना स्वाभाविक ही है।)

मेरा पग-पग संगीत से भरा है और सांसों से स्वप्नों के पराग झड़ते रहते हैं। आकाश के नये रंग मानो मेरे लिए रेशमी वस्त्र बुनते रहते हैं और मेरी छाया में शीतल मलय वायु पलती रहती है। (जिस तरह बादलों की गति में एक संगीत है और हवा के स्पर्श के कारण उनसे जल कण टपकते रहते हैं उसी तरह मैं भी संगीतमयी हूँ और अपने गीतों में स्वप्नों को बिखेरती रहती हूं। आकाश के रंगों से प्रेरणा पाकर मेरी कल्पना रंगीन हो उठती है और खुद दुखी रहकर भी मैं संसार को सुख देती हूं।)

मैं क्षितिज की भृकुटि पर धूमिल होकर छा जाती हूँ और चिन्ता का सघन भार बनी रहती हूँ। धूलकणों पर मैं जलकण बन कर बरसती हूँ और नवजीवन का अंकुर बन फूट निकलती हूं। (चिंता का भार जब मन पर होता है तो वह भृकुटि की रेखाओं पर स्पष्ट हो उठता है। बादल भी क्षितिज पर ऐसे घिरे रहते हैं मानों चिन्ता के साकार भार हों।)

मैं जिस पथ पर चलती हूँ उसे मेरा आगमन मलिन नहीं करता और न मेरे जाने पर पदचिन्ह ही शेष रहते हैं। मेरे आगमन की सुधि अंत में जगत के लिए सुख की सिहरन बन जाती है। (बादल भी आते-जाते अपना कोई चिन्ह आकाश में नहीं छोड़ जाते और वर्षा की स्मृति जगत के लिए सुखदायी बन जाती है।)

विस्तृत आकाश का कोई भी कोना मेरा कभी अपना नहीं होता। मेरा परिचय और इतिहास इतना ही है कि कल उमड़ी थी और आज मिट चली।

(२)

अपने प्रियतम को सम्बोधित कर कवयित्री कहती है—

मैं तुम्हारी वीणा भी हूँ और उससे निकलने वाली रागिनी भी हूँ ।

मेरी नींद वह थी जब जगत के कण-कण निश्चल और स्पन्दनरहित थे और प्रथम जागृति वह थी जब सृष्टि का चक्र शुरू हुआ तथा संसार ने पहले जीवन के स्पन्दन का अनुभव किया । मेरा ठिकाना प्रलय में है और मेरी यात्रा के पद-चिन्ह जीवन में हैं । मैं वह शाप हूँ जो बंधन में पड़कर ही वरदान बन गया है । मैं किनारा भी हूँ और तटरहित नदी भी हूँ । (नोट:– परमात्मा के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध और उसकी स्थिति का वर्णन है इसमें । आत्मा का पता वास्तव में प्रलय ही है, जब सृष्टि का लोप हो जाता है तब सिवाय परमात्मा के अस्तित्व के कुछ नहीं शेष रहता—जीवात्मा भी उसमें मिलकर एकाकार हो जाती है । जीवन धारण करने पर जीव का ब्रह्म से जो वियोग होता है, वही उसके लिए अभिशाप है किन्तु शरीर का यह बंधन उसके लिए वरदान भी बन जाता है क्योंकि साधना का सुअवसर मिलता है ।)

मैं वह चातक हूँ जिसके नयनों में (आंसुओं के) मेघ घिरे रहते हैं, मैं वह निष्ठुर दीपक हूँ जिसके प्राण में पतंग का निवास है, मैं वह व्याकुल बुलबुल हूं जो काँटे को अपने हृदय में छिपाये रहती है · और मैं वह चंचल छाया हूँ जो शरीर का अंग होने पर भी शरीर से दूर रहती है । मैं तुम से दूर होने पर भी अखंड सौभाग्यवती हूं (दूर रहने पर भी जीवात्मा का सर्वस्व परमात्मा है ।)

मैं वह आग हूँ जिससे हिमजल की बूँदें ढुलकती हैं (हृदय में ज्वाला है आँखों में अश्रु) । मैं वह शून्य हूं जिसके लिए चरणों के पाँवड़े बिछे हैं । मैं वह पुलकन हूँ जो कठोर पत्थर में पला है । मैं वह प्रतिबिम्ब हूँ जो आधार के हृदय में है । मैं नीला मेघ भी हूँ और उसकी सुनहली विद्युत रेखा भी हूँ ।

मैं नाश भी हूँ और सृष्टि के अनन्त विकास का क्रम या सिलसिला भी हूँ । त्याग का चमकता दिन भी हूँ और आसक्ति की अंधकार पूर्ण रात्रि भी । मैं वीणा का तार भी हूँ, उसकी झँकार और गति भी हूँ । पीने का पात्र भी हूँ, मधु भी हूँ, मधु का पान करने बाला भ्रमर भी हूँ और सब की मधुर विस्मृति भी हूँ । मैं अधर भी हूँ और मुस्कुराहट की चाँदनी भी हूँ ।

मिलन

जब अपने रूपहले करों की कोमल तूलिका से सुकुमार ओस-बिन्दुओं को ले लेकर यह संसार कलियों पर अपनी करुण कथा का अंकन कर रहा था ;

जब भोले मेघ अपने तरल (वाष्पमय) हृदय की उच्छ्वासें लुटा जाते थे और दिन के घाव पर शीतल अंजन बरसाने के लिए अंधकार आ जाते थे ;

जब नक्षत्रों के लोकों के पवित्र फूल मधु की बूँदों से छलक उठे थे और स्नेह से वँचित विधुर-हृदय की धीमी कम्पन के समान वह शान्त किनारा (मेरे जीवन का) सिहर उठा था ;

(अर्थात् जब मेरे जीवन का प्रभात था, अपनी ही भावना के अनुसार मेघों को उसाँसें लेते देखती, अँधकार शीतल लगता और रात मधुर लगती थी ; हृदय उस समय सूना-सूना था, लेकिन अचानक उसमें हलचल हुई—)

तब मूक प्रणय के समान, मधुर कथा के समान और स्वप्न लोक जैसा आह्वान मेरे हृदय को मिला। मुरली की मधुमय तान सुनाने के लिए वे (प्रितम) चुपचाप आ गये।

उनकी चँचल चितवन के दूत क्षण-भर में हृदय के रहस्य का पता दे गये और मेरे स्थिर पलकों में न जाने क्या उत्पात मचा गये—कोई जादू कर गये जिससे मैं व्याकुल हो उठी।

उसी समय से जीवन में उन्माद छा गया है और जलन के कारण प्राणों में जो फफोले पड़ गये हैं, वे ही मेरी निधियाँ बन गईं। मेरा मन अब निरन्तर वेदना के ही प्याले पीता और माँगता रहता है।

उसी दिन दूर क्षितिज के उस पार मेरे लिए पीड़ा का एक साम्राज्य बस गया। मिटना ही जहाँ मुक्ति थी और मूक रुदन ही वहां का पहरेदार था। (मेरा जीवन उसी दिन से पीड़ामय हो उठा। मूक रुदन ही इस पीड़ा की रक्षा करता रहा, बिना अपने आपको मिटाये इससे मुक्ति कहाँ ?)

सखि, तुम कैसे कहती हो कि मेरे उस मिलन की बात केवल स्वप्न है ?' (जो सत्य है उसे मिथ्या कैसे मानूं ?) इन फूलों को देखो, इनमें मेरे आँसू और उनकी (प्रियतम की) हँसी अभी तक भरी है। (फूल का खिला हुआ रूप हँसी का और उस पर लदे ओस के कण आँसू हैं।)

मेरे दीपक

हे मेरे प्राणों के दीपक ! तू मधुर भाव से (मंद मंद) जलता रह और युग युग तक प्रत्येक दिन और प्रत्येक क्षण मेरे प्रियतम पथ को प्रकाशित करता रह।

प्रचुर मात्रा में धूप बनकर सुगंध को फैला और मुलायम मोम की भाँति हे मेरे शरीर, तू सतत घुलता रह। तेरे जीवन का प्रत्येक के अणु गल-गलकर प्रकाश का अपार सागर उत्पन्न करे।

हे मेरे प्राणों के दीपक ! जीवन की इस सार्थकता पर पुलकित होकर तू जलता रह।

संसार में जितने शीतल, सुकुमार और नये प्राण हैं, वे तुझसे ज्वाला के कण माँग रहे हैं। विश्वरूपी पतंग यह कहते हुए सिर धुन रहा है कि 'हाय, मैं जलकर तुझमें मिल नहीं पाया।'

हे मेरे प्राणों के दीपक ! तू सिहर सिहर कर जलता रह।

यह देख कि आकाश में कितने स्नेहहीन दीपक जलते हैं, जल से पूर्ण सागर का हृदय भी बाड़वज्वाला से दग्ध होता रहता है और जल बरसानेवाला बादल भी बिजली लेकर गिरता है।

हे मेरे प्राणों के दीपक ! तू विहँस-विहँस कर जलता रह। (क्योंकि जलने-वाला तू अकेला ही नहीं है।)

वृक्ष के सुकुमार हरे अंग भी हृदय में अग्नि को धारण करते हैं (काष्ट में अग्नि होती है) और पृथ्वी के जड़ हृदय में भी ज्वालाओं की हलचल कैद है। (पृथ्वी अग्निगर्भा है।)

हे मेरे प्राणों के दीपक ! तू अपने प्रकाश को सर्वत्र बिखराता हुआ जल।

मेरी तीव्र निश्वासों से हे सुन्दर, तू बुझने का भय न कर। अपने सुकुमार और चंचल पलक रूपी अंचल की ओट में मैं तेरी रक्षा कर रही हूं। (आहें तो जीवन भर रहेंगी ही, उनसे तुझे कोई खतरा नहीं। जब तक प्रियतम की छवि आँखों में है तब तक तू जलता रहेगा।)

हे मेरे प्राणों के दीपक ! तू सहज भाव से जलता रह।

लघुता का बन्धन उसकी सीमा है (अगर सीमा न हो तो वह लघु नहीं रहे), लेकिन तू तो अनादि है (शरीर की सीमा अगर स्वीकार न करे तो आत्मा भी परमात्मा का अंश होने के कारण अनादि है) इसलिए जीवन की घड़ियाँ मत गिन। मैं तो अपनी आँखों के कभी न खतम होनेवाले खजाने से तुझमें आँसू-जल भरती ही रहती हूं—तेरे स्नेह रहित होने का सवाल ही कहाँ उठता है !

हे मेरे प्राणों के दीपक ! सजल हो होकर तू जलता रह।

अंधकार की सीमा नहीं है, किंतु तेरा प्रकाश भी अनादिकाल से है। नये-नये खेल हमेशा दोनों (प्रकाश और अंधकार का सतत संघर्ष) खेलते रहेंगे। तू अंधकार अणु-अणु पर विद्युत जैसा कभी न मिटानेवाला चित्र बनाता चल।

हे मेरे प्राणों के दीपक ! निश्चल भाव से जलता रह।

जल-जलकर तू जितना ही क्षय को प्राप्त होता है, उतना ही वह छलनामय (अनन्त प्रियतम) निकट आता जाता है। मधुर मिलन की वेला में तू प्रियतम की उज्ज्वल मुस्कान में अपने आपको लीनकर प्रसन्नता से मिट जाना—बुझ जाना। (आत्मा का अस्तित्व तभी तक रहेगा जब तक कि परमात्मा से उसका मिलन न हो। मिलन होते ही जन्म-मरण के बंधन टूट जाते हैं, प्राण की स्वतंत्र सत्ता जाती रहती है।)

हे प्राणों के दीपक ! तू मादकता के साथ जलता रह (इस भाव में डूबे कि मिलन की घड़ी भी एक दिन आयेगी।) युग-युग तक प्रत्येक दिन और प्रत्येक क्षण मेरे प्रियतम के पथ को प्रकाश देता रह !

तेरी चिर सजग आँखें निद्रा से अलसायी हुई हैं, यह तूने अपना कैसा अस्त व्यस्त वेश बना लिया है ? जाग तुझको अभी बहुत दूर जाना है।

आज अचल हिमालय का हृदय भले ही काँप उठे, या यह मौन और अलसाया हुआ आकाश भले ही प्रलयकालीन आँसुओं की वर्षा करते हुए रोने लगे, आलोक को पीकर चाहे अंधकार की छाया सर्वत्र डोलने लगे या निष्ठुर तूफान विद्युत की शिखाओं में जागकर गरजने लगे, लेकिन तुझे तो विनाश के पथ पर भी अपने पद-चिन्हों को छोड़ जाना है। जाग, तुझको अभी बहुत दूर जाना है।

मोम के आकर्षक बंधन (मोह के सुकुमार बंधन जो मोम के समान मुलायम हैं) क्या तुझे आज बाँध रखेंगे ? क्या तितलियों के रंगीले पंख तेरे पथ की बाधा बन जाएँगे ? (अर्थात् क्या तू रंगीन दृश्यों को ही देखता रह जायगा चलना छोड़कर ?) विश्व में जो क्रन्दन व्याप्त है उसके स्वर को क्या तू भ्रमरों के गुंजन के कारण नहीं सुन सकेगा ? फूलों की पंखुड़ियाँ जो ओस से गीली हैं, उनमें ही क्या तू डूब जाएगा ? तुझे अपनी ही छाया को अपने लिए कारागार नहीं बनाना है (अपने आपमें ही डूबे नहीं रहना है, विश्व का भी ध्यान रखना है।) । जाग, तुझको अभी बहुत दूर जाना है !

वज्र जैसे कठोर हृदय को तूने आँसू के एक कण में गला दिया है, किसको अपने जीवन का अमृत देकर तू दो घूँट मदिरा माँग लाया है ? (जिसमें यों मस्त है।) हृदय की आंधी क्या मलय समीर की चादर ओढ़कर सो गयी है ? क्या संसार का अभिशाप ही तेरे पास चिरनिद्रा बनकर आ गया है ? अमरता के पुत्र ! मृत्यु को अपने हृदय में क्यों बसाना चाहता है ? (मानव अमृत-पुत्र है, उसके जीवन का लक्ष्य है मृत्यु से अमरत्व की ओर जाना।) जाग, तुझको अभी बहुत दूर जाना है !

ठंढी साँस लेकर अपनी दुखद आप बीती नहीं सुना, उस जलती कहानी को अब भूल जा। तेरे हृदय में आग है, यह अच्छा ही है क्योंकि जब हृदय में आग होती है तभी आँखों में जल भर आते हैं; करुणा का उद्रेक होता है।

तेरी वह हार (बीते जीवन की) भी अब तेरी विजय की अभिमानिनी ध्वजा बनेगी। जले पतंग की क्षणभर टिकनेवाली राख ही अमर दीपक के अस्तित्व की निशानी है। तुझे अंगारों की शैय्या पर अब सुकोमल कलियाँ बिछानी है। जाग, तुझको अभी बहुत दूर जाना है।

यात्रा और यात्री

ऐ मुसाफिर! जब तक तेरी साँसों का आना-जाना जारी है, तब तक तुझे जीवन-यात्रा के पथ पर कदम बढ़ाते हुए चलना ही पड़ेगा। (जीवन का अर्थ ही है गतिशीलता, और गतिहीनता मृत्यु का ही दूसरा नाम है।)

आकाश में तारेगण झुंड बनाकर अपने मौन संगीत से दिशाओं को मुखरित करते हुए सदा चल रहे हैं। महाशून्य में यह आकाश (सौर मण्डल के मध्य का) भी घूमते और ग्रहों को घुमाते हुए चल रहा है। (यहाँ आकाश सीमित अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और शून्य का अर्थ व्यापक अनन्ताकाश है। अनन्ताकाश में जब पृथ्वी घूम रही है और कभी एक जगह पर स्थिर नहीं रहती तो यह सिद्ध है कि इसके साथ इसका वायुमंडल भी चलायमान रहता है। पृथ्वी अपनी आकर्षणशक्ति से जहाँ तक की वस्तुओं को अपनी ओर खींचने की क्षमता रखती है, वहाँ तक इसका 'अपना' आकाश है।) हमारे पाँवों के नीचे की भूमि अचला नहीं है, बल्कि चंचला है। (पृथ्वी को 'अचला' भी कहा जाता है जब कि वस्तुतः वह वेग के साथ सूर्य की परिक्रमा करती रहती है।) सृष्टि का एक अणु तक क्षण-भर के लिए भी कहीं एक जगह टिक नहीं पाता, सभी गतिशील हैं। इस प्रकार तुझे सब तरफ से गतिशील शक्तियाँ घेरे हुए हैं और तुझे भी अपनी जगह से टलना ही पड़ेगा। ऐ मुसाफिर! जब तक तेरी साँसों का आना-जाना जारी है, तब तक तुझे जीवन-यात्रा के पथ पर चलते ही रहना होगा।

जहाँ पर गढ़े थे, वहाँ पर तुझे अपने पैरों को जमाना ही पड़ा था और पथरीली राहों पर चलते हुए तुझे अपने पैरों के छाले को पत्थरों से छिलाना ही पड़ा था (ऊँची-नीची राहों पर चलते हुए असीम कष्ट उठाना ही पड़ता है।)

जहाँ हरी मखमल के समान सुन्दर घास बिछी थी, वहाँ पर सहसा मन लोट गया था और जहाँ घनी आरामदायक छाँह मिली थी, वहाँ पर तन को शीतल करना ही पड़ा था। (राह में दुख और सुख दोनों का स्वागत करना होता है।) पग-पग पर तेरे साहस और धैर्य की परीक्षा हुई और पग-पग पर कितने ही प्रलोभन सामने आये। तुझमें शक्ति भी भरी है और दुर्बलताएँ भी तुझमें हैं। (कष्टों को सहते हुए चलने की शक्ति है और सुख की ओर आकर्षित होकर एक जगह बैठ जाने की दुर्बलता भी है।) अगर एक तरफ डटोगे तो दूसरी तरफ से बिदा होना ही पड़ेगा। (अगर चलना चाहोगे तो सुख का ध्यान छोड़ा होगा और यदि सुख में लिप्त रहोगे तो अपनी गतिशीलता खो बैठोगे।) ऐ मुसाफिर ! जब तक तेरी साँसों का आना-जाना जारी है, तब तक तुझे जीवन-यात्रा के पथ पर चलते ही रहना होगा !

पथ के काँटे कुछ ऐसे होते हैं जो पाँवों में चेतना की स्फूर्ति भर देते हैं, क्योंकि जब वे चुभते हैं तब तेज चलने के लिए भी मजबूर कर देते हैं। उनका शुक्रिया है कि वे पथ को प्रेरणादायक बनाये रहे। किंतु कुछ काँटे ऐसे भी होते हैं जो रुकने के लिए मजबूर कर देते हैं और मानों अन्तर के उत्साह का ही कलेजा चीर देते हैं, ऐसे काँटों के दल को तुझे कुचलना ही पड़ेगा। (अन्यथा जीवन की यह यात्रा बीच में ही रुक जाएगी।) ऐ मुसाफिर ! जब तक तेरी साँसों का आना-जाना जारी है, तब तक तुझे जीवन-यात्रा के पथ पर चलते ही रहना होगा।

सूर्य हँसना भूल गया, चाँद ने मुस्कराना छोड़ दिया और रात भी तारिकाओं को जगाना भूल गयी। (दुख की आँधी में सब छिप गये।) हाथ में जो दीपक था, उसे भी क्रूर पवन के झोके ने बुझा डाला—लेकिन हे पथिक ! इसे तू बैठ जाने का बहाना न बना ले। (इस हालत में भी तुझे अपने पथ पर चलते चलना है। तेरे हृदय में ही निरंतर आग जल रही है, रास्ता देखने के लिए उसको जलाना ही है, मुझे बाहरी परिस्थितियों को प्रतिकूल होने दे, तुझे भरोसा अपने आप पर करना है। अपने हृदय के प्रकाश में बढ़ा चल !)

ऐ मुसाफिर ! जब तक तेरी साँसों का आना जाना जारी है, तब तक तुझे जीवन-यात्रा के पथ पर चलते ही रहना होगा।

वह कठिन पथ (जिस पर चल चुके) और उसमें आनेवाली मुसीबतों की याद कब भूली जा सकती है ? उसकी याद कर करके तो अभी तक साँस फूलती है—साहस डिगने लगता है। यह मनुष्य की वीरता है या उसकी बेशर्मी है कि सदा कष्ट झेलते रहने पर भी उसके मन में सुखों का स्वप्न लेकर आशा झूलती रहती है ! वे दुःखद स्मृतियाँ ही सत्य हैं क्योंकि उनका अनुभव हो चुका है और सपने झूठे हैं क्योंकि वे कभी सत्य नहीं होते। (सुख का स्वप्न देखते रहने पर भी निरंतर दुख झेलना पड़ता है।) फिर भी अगर चलते ही रहना है तो झूठ (स्वप्न या आदर्श) से सत्य (यथार्थ) को बराबर छलते ही रहना होगा। (अगर आशा न हो, सुख के सपने न हों या कोई आदर्श सामने न हो तो जीवन के दुर्गम पथ पर चलना नामुमकिन हो जाएगा और उत्साह या धैर्य को बनाये रखने की शक्ति जाती रहेगी।) ऐ मुसाफिर ! जब तब तेरी साँसों का आना-जाना जारी है, तब तक तुझे जीवन-यात्रा के पथ पर चलते ही रहना होगा।

अँधेरे का दीपक

अँधेरी रात आ गयी है, लेकिन इसमें दीपक जलाना कब मना है ?

कल्पना के हाथों से जो सुन्दर मंदिर निर्मित हुआ था, जिसमें भावना के करों ने चँदोवे खड़े कर दिये थे, स्वप्नों के करों से जो रुचिपूर्वक सँवारा गया था और जो स्वर्ग के दुर्लभ रंगों एवं रसों से सना था, वह (मंदिर) यदि एक बार ढह कर भूमि सात् हो गया तो बिखरे हुए पत्थरों, कंकड़ों तथा ईंटों को जोड़ कर (मन की बिखरी शक्तियों को इकट्ठा कर) अपने लिए एक नयी शक्तिदायिनी कुटिया बनाना कब मना है ? अँधेरी रात गहरी हो उठी है, लेकिन इसमें दीपक जलाना कब मना है ? (सुखद स्वप्न नष्ट हो गए हों और निराशा से दिल बैठ गया हो तो भी हताश होकर बैठ नहीं जाना है, नये सिरे से प्रयत्न करना है।)

मेरा मनमोहक मधु का प्याला ऐसे सुन्दर नीलम से बनाया गया था जिसकी आभा वर्षाकालीन मेघों से धुले नीले आकाश की भाँति थी। वह बहुत ही सुन्दर था और उसमें उषा की प्रथम किरण की लालिमा जैसी मदिरा भरी थी। उस छलकती मदिरा की चमक ऐसी थी मानों मेघों के बीच दामिनी चमक रही हो। वही पात्र अगर टूट गया (और मदिरा यों ही बह गयी) तो अपने हाथ की दोनों हथेलियों को मिलाकर (अंजलि बनाकर) एक निर्मल स्त्रोत से ही प्यास बुझाना कब मना है? अंधेरी रात गहरी हो उठी है, लेकिन इसमें दीपक जलाना कब मना है?

वह समय भी क्या था जब एक भी चिन्ता पास नहीं आयी थी। अँधेरा तो दूर उसकी छाया भी पलकों पर घिर नहीं पायी थी। जिसकी आँखों में मस्ती झूमती थी, बातों से मस्ती टपकती थी और हँसी थी तो ऐसी कि उसे सुनकर बादल भी लज्जित हो गये, वह चली गयी जीवन से दूर, तो मनाता हूँ कि उल्लास या प्रसन्नता का आधार ही ले गयी। लेकिन समय की अस्थिरता पर (यह मानकर कि सब समय का फेर है) मुस्कुराना कब मना है? अँधेरी रात गहरी हो उठी है, लेकिन इसमें दीपक जलाना कब मना है?

हाय, वे उन्माद के झोंके कि जिसमें प्राण पागल होकर गाने लगा था, मैंने भौतिक वैभवों से आँख फेर करके सिर्फ गान का वरदान माँगा था। एक हृदय से दूसरे हृदय में जो निरंतर ध्वनित हो, ऐसे मस्त बना देने वाले गीत गा-गाकर आकाश और धरती को गुंजायमान कर दिया था। अब जब उन गीतों का ही अंत हो गया तो फिर मन बहलाने के लिए ही किसी अधूरी पंक्ति को ही लेकर गुनगुनाना कब मना है? अँधेरी रात गहरी हो उठी है, किन्तु इसमें दीपक जलाना कब मना है?

हाय, वे साथी जो चुम्बक-लोहे के समान आकर्षण से खिंचकर पास आये थे और पास क्या आये जैसे दिल में ही समा गये। वे दिन ऐसे कटे थे मानों वीणा के तार मिलाकर कोई जिन्दगी का मीठा और प्यारा गीत गाये। वे साथी जब चले गये तो यह सोचकर कि अब वे लौटनेवाले नहीं हैं, कोई

नया मनचाहा मित्र ढूँढकर दिल लगाना कब मना है ? अँधेरी रात गहरी हो उठी है, किंतु इसमें दीपक जलाना कब मना है ?

वह भी कैसी प्रचंड आँधी कि जिसमें प्यार का वह घोंसला उजड़ गया। तेरा शोर करना और चिल्लाना व्यर्थ गया। नाश की उन शक्तियों का मुकाबला कौन कर सकता है ? (नियति के कोप के सामने मनुष्य कुछ नहीं कर सकता, यही आशय है।) किन्तु ऐ निर्माण के प्रतिनिधि ! (मनुष्य निर्माण का प्रतिनिधि है क्योंकि नाश के पश्चात् भी वह पुनः निर्माण में लगा रहता है।) तुझे यह बताना होगा कि जो बसे हुए हैं वे तो प्रकृति के जड़ नियमानुसार उजड़ते ही हैं, किंतु किसी उजड़े हुए को फिर से बसाना कब मना है ? अँधेरी रात गहरी हो गयी है, किंतु इसमें दीपक जलाना कब मना है ?

पुकार लो

कवि अपनी जीवनदायिनी प्रेरणा को सम्बोधित करते हुए कहता है--

(१)

मैं इसीलिए तुम्हारी प्रतीक्षा में अब तक खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकारकर अपने पास बुला लो !

जमीन बोलती नहीं है, न आसमान ही बोलता है। मुझे देखकर संसार भी चुप्पी लगाये रहता है। ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ मैं अजनबी न समझा गया। दिमाग और दिल को टटोलते हुए मैंने कहाँ-कहाँ का चक्कर नहीं लगाया ! ऐसा कोई मनुष्य नहीं दिखायी दिया जो आशा को छोड़कर जीवन धारण कर सका हो। इसीलिए मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में अब तक खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकारकर अपने पास बुला लो।

(२)

अंधकार के सागर को आँखों की नौका पार नहीं कर सकी। मेरी यह नयन-नौका विनष्ट सपनों से लदी है और विषादमयी स्मृतियों से भरी है। न इसे धरती का किनारा मिला और न प्रभात की रेखा मिली। विरह की यह रात

न तो कट सकी और न घट ही सकी। (विरह की अनन्त रात्रि में प्राण तड़पते रहे।) ऐसा मनुष्य कहाँ है जिसे प्यार का अभाव नहीं खला हो ? मैं इसीलिए तुम्हारी प्रतीक्षा में अब तक खड़ा रहा कि तुम मुझे प्रेम से दुलार लो ! मैं इसीलिए तुम्हारी प्रतीक्षा में अब तक खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार कर अपने पास बुला लो।

(३)

मैं अपनी बरबादी के पतझड़ से ही बसंत की आशा लगा चुका। ग्रीष्म की तपती दोपहरी से ही बासंती समीर की आशा लगा चुका। रेगिस्तान की मरीचिका (जिसमें जल के भ्रम से मृग अपने प्राण गँवाते हैं) मुझे अमृतमयी लगी और जलते अंगारों से ही मैं हिम-तुषार की आशा लगा चुका। ऐसा मनुष्य कहाँ है जिसे अपनी भूल शूल के समान नहीं गड़ी है ? (अर्थात भूल का दुखद परिणाम मनुष्य को भोगना ही पड़ता है।) मैं इसीलिए खड़ा रहा कि मेरी भूल को तुम सुधार दो। मैं इसीलिए तुम्हारी प्रतीक्षा में अब तक खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार कर अपने पास बुला लो। पुकार कर प्यार कर लो और प्यार करके मुझे सुधार लो !

मंगल आह्वान

भावों के प्रबल आवेग मेरे हृदय में हलचल मचा रहे हैं—प्रकट होने के लिए आतुर हैं।

वे कहते हैं कि हम हृदय के बाँध को तोड़कर अनजाने स्वर स्रोतों में बह निकलेंगे और तृण, तरु, लता, पवन और जल-थल को गीत बनकर आच्छादित कर लेंगे। (भावनाएँ गीतों का रूप धारण करने के लिए मचल रही हैं, यही संकेत है।) लेकिन मैं तो मजबूरियों से घिरा हूं। हाय, सोये जगत को अपने गीतों के जरिये कैसे जगाऊँ ? इस अंधकारपूर्ण युग में मैं ज्योति की कौन सी रागिणी गाऊँ ?

मैं मजबूर हो कर तुम्हारा इन्तजार कर रहा हूं। हे स्वरसम्राट ! आओ और अपनी उदारता दिखाओ। हे विराट गायक ! पल भर के लिए भी तो मेरे

प्राणों में आ जाओ। प्राणों की इस बाँसुरी पर तुम अपने रसमय स्वर में ऐसे गीत गाओ जो युग-युग तक अमर रहें। वे गान जिनको गाकर आज तक पृथ्वी और सागर शान्त नहीं हुए तथा जिनकी हर तान पर आकाश के नक्षत्रगण आकुल हो-होकर सिहर उठते हैं, सरिता की कलकल-छलछल ध्वनि, झरने का हमेशा होने वाला झर-झर स्वर, वर्षा काल की बूँदों की रिमझिम, पीले पत्तों की मर्मराहट, सागर की सांस, पक्षियों का कलरव, पवन का नाद और भ्रमर का गुंजन—इन सभी मधुमय स्वरों को आज तुम मेरी बाँसुरी के छिद्रों में भर दो। मुझे एक बार तुम आदेश तो दो ताकि मैं तुरही को फूंक दूँ (बजा दूँ— तूर्य नाद कर दूँ) जिससे महान प्रभाती राग सर्वत्र गूँज उठे। मेरे स्वर में तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य) का समावेश हो और उससे सोये हुए संसार के प्राण सजग हो उठें। उस स्वर में अतीत का वैभव और सुनहले भविष्य की आशा लिए वर्तमान युग का धर्म पुकार उठे सिंहों की गुफा में घना अंधकार छाया है, उसमें उनकी तेजोमय हुंकार गूँज उठे। (भारत की उन दिनों की गुलामी का वर्णन है। यह देश सिंह के समान पराक्रमी लोगों का निवास स्थल रहा, फिर भी पराधीनता के कारण यहां घोर अंधकार छाया हुआ है। जब यहां के सिंह जाग कर गरजने लगेंगे, तब यह अंधकार तुरन्त दूर हो जायगा।) मेरे स्वर में ऐसी वेदना हो कि जिनका सुख-सौभाग्य लुट गया उनके हृदय को टीस से भर दे और मैं इस प्रकार चीखूं कि वसंत की कोयल भी उसे याद कर रोती हुई कूक उठे। (मेरा क्रन्दन सब को रुला डाले।) आज मेरी कविता में वर्तमान का दुख ही नहीं हो बल्कि प्रिय लगने-वाला इतिहास भी अपनी संपूर्ण गरिमा के साथ उसमें ध्वनित हो और इस प्रकार वर्तमान के चित्रपट पर गौरवशाली अतीत का अंकन संभव हो जाए। (वर्तमान युग को बीते युग जैसा समृद्धिशाली और उज्ज्वल बना दें।—भारत का अतीत बड़ा ही भव्य और सुन्दर रहा है, यह जगविदित है।) हे देव! मेरे दुर्बल प्राणों में ऐसी आग भर दो कि जिनके हृदयों में घने अंधकार ने डेरा डाल लिया है उनको प्रिय लगने वाला प्रकाश दे सकूँ। ऐसा वरदान दो जिस से कला सब पर अपना अधिकार जमा ले और धूलिकण जैसी तुच्छ वस्तुओं से

लेकर सुन्दर पारिजात पुष्पों पर गीत रचे और गाये जा सकें। सब से पहले कला की जो मधुर ज्योति कविता बन कर तमसा नदी के तटों पर खिली थी (आदि कवि वाल्मीकि की ओर संकेत है।), वह युगों से आकाश के तारों और वन कुसुमों में हँसती आ रही है (अर्थात् प्रकृति से कविगण सदा प्रेरणा पाते रहते हैं।) सूर्य के समान चमकने वाले सूरदास और चन्द्रमा के समान ज्योत्सना लुटाने वाले तुलसी दास उसी ज्योति का प्रकाश आज भी फैला रहे हैं (आज भी उनकी कविताएँ जन-मन को प्रेरित करती हैं।)। जुगनू के समान टिम-टिमाने वाले वर्तमान कालीन कवि भी उसी के बुझते-से कणों को लेकर कवि कहा सके हें। (पुराने कवियों की तुलना में कवि दिनकर आज के कवियों को बहुत छोटा समझते हैं, इसी लिए उनकी उपमा क्रमशः नक्षत्रों और जुगनू से दी है।) उसी ज्योति का प्रकाश मेरे हृदय के कोने-कोने को भी उज्ज्वल कर दे ताकि अगर मेरी लेखनी धूल का भी स्पर्श करे तो वह स्वर्ण बनकर चमक उठे।

किसको नमन करूँ मैं

हे मेरे प्यारे देश ! मैं तेरी बन्दना करूँ या तेरी विशाल नदियों, पर्वतों और जंगलों की ? तेरे शरीर को मैं प्रणाम करूँ या तेरी आत्मा की वन्दना करूँ ? (भारत का भौगोलिक रूप उसका शरीर है और सांस्कृतिक रूप उसकी आत्मा।) हे भारतवर्ष ! मैं किसकी वन्दना करूँ, मैं किसको प्रणाम करूँ ?

पृथ्वी के नक्शे पर जो त्रिभुजाकारभूखंड अंकित है, क्या तेरा यही असली स्वरूप है ? क्या तू मानव के आकाश में विचरने की कल्पना नहीं है ! (मानवता का चरम विकास इसी देश में हुआ है और यहाँ के चिन्तकों का मन सदैव उर्ध्वगामी रहा है।) तू रहस्यों (आत्मा का रहस्य, जीवन और जगत का रहस्य) को जाननेवाला और गोपन सत्यों का द्रष्टा है। हे मेरे प्यारे देश ! तू पत्थर (जड़) नहीं है, पानी (चेतन) है। (दूसरा अर्थ भी यहाँ लिया जा सकता है :—तू केवल पत्थर—पर्वत—और पानी—नदियाँ—नहीं है। अर्थात् पर्वतों और नदियों से भरा तेरा भौगौलिक रूप ही तेरा असली स्वरूप नहीं है।)

यहाँ की जड़ प्रकृति में छिपा जो कोई चेतन है, क्या उसी की वंदना मैं नहीं करूँ ? हे भारतवर्ष ! मैं किसकी वंदना करूं, मैं किसको प्रणाम करूं ?

तू वह है जिसे मानव ने बहुत ऊंचाई पर चढ़कर प्राप्त किया था। तू वह संदेश है जो आकाश से धरती को मिला था ! (आध्यात्मिक गरिमा से पूर्ण सांस्कृतिक भारत।) तू वह है जिसकी याद से ही आज भी मन में सुगंध फैल जाती है—मन पुलकित हो उठता है और थकी हुई आत्मा को आकाश में विचरने की प्रेरणा जगती है ! क्या इस सुगंधों के निवासस्थान की मैं वंदना करूं ? हे भारत ! मैं किसकी वन्दना करूं, मैं किसको प्रणाम करूं ?

हे भारत ! तू वहाँ नहीं है जहाँ मनुष्य से ही मनुष्य डरते हैं और सबको सबसे शंकित तथा त्रस्त रहना पड़ता है। (भारत का प्राचीन आदर्श रहा है कि सभी मानव एक परिवार के सदस्य हैं। किंतु आज यहाँ सभी ईर्ष्या-कलह आदि भावनाओं से पीड़ित हैं।) स्नेह के स्वाभाविक स्रोत से जहाँ के निवासी दूर पड़ गये हैं और जहाँ के लोग अलग-अलग झंडों और नारों के पीछे पड़कर कई दलों में विभक्त हो गये हैं, वहाँ भी तू नहीं है। मैं कैसे आज की जनता के इस कुत्सित और बँटे हुए जीवन की वन्दना करूं। हे भारत ! मैं किसकी वन्दना करूं, किसको प्रणाम करूं ?

तू तो वह लोक है जहाँ मानव का मन उन्मुक्त है, संकीर्ण नहीं है और उनका जीवन ऐसी शीतल और स्निग्ध धारा के समान है जो समरस हो ; जहाँ पहुंचकर पुरुष और नारी दिशाओं के बंधन को नहीं मानते और सारे विश्व को प्रेम के साथ अपनी आत्मा के रूप में देखते हैं। (आत्मवत् सर्वभूतेषु) इसी सुन्दर और पवित्र स्वप्न की तलाश कर क्या मैं अपना सिर नवाऊं ? हे भारतवर्ष ! मैं किसकी वंदना करूं ? मैं किसको प्रणाम करूं ?

'भारत' शब्द किसी स्थल-विशेष का अर्थ नहीं बताता है, बल्कि इसके अर्थ का सम्बन्ध तो मानव के विशेष गुण से है। यह एक देश का शील नहीं है, बल्कि सारे विश्व का है। जहाँ कहीं भी एकता का अखंड साम्राज्य है और प्रेम का स्वर मुखरित है, वहाँ हर देश में जीवन और बोलता हुआ भारत ही

खड़ा है। क्या मैं निखिल विश्व में व्याप्त अपनी वंदनीय जन्मभूमि की वंदना करूं ? हे भारतवर्ष ! मैं किसकी वंदना करूं ? मैं किसको प्रणाम करूं ?

यह पृथ्वी पर्वतों से, सागर से और नदियों से कई टुकड़ों में विभक्त हो गयी है और अलग-अलग देश और महादेश बन गये हैं। लेकिन जब दो भिन्न द्वीपों या महादेशों से मैत्री के दो हाथ एक दूसरे से मिलने के लिए बढ़ते हैं तो उनके बीच की खाई भर जाती है और शून्य में ही महा आनन्द का पर्व मचता है। इस प्रकार मैत्री के पुल का निर्माण दो देशों या द्वीपों के बीच भारत ही करता है। (भारत ही इस दिशा में सचेष्ट रहा है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से विद्वेष न रखे और सब मिलजुल कर रहें।) क्या मैं यह मंगलमय महासेतु बाँधनेवाले भारत की बन्दना करूँ ? हे भारत मैं किसकी वंदना करूँ ? मैं किसको प्रणाम करूँ ?

जो लोग जहाँ कहीं भी दो हृदयों के तारों को जोड़ रहे हैं, (अर्थात् दो दिलों को मिला रहे हैं), संसार की गति को जो मैत्री भावना की ओर मोड़ रहे हैं, जो जीवन की सरिता में प्रेम रूपी रसायन का मिश्रण कर रहे हैं तथा देश-देश के बीच की बंद खिड़कियों को खोलने जा रहे हैं, ऐसे जन-जन को क्या मैं अपना आत्मीय बंधु कह कर नमस्कार करूँ ? मैं किसकी वंदना करूँ ? हे भारत ! मैं किसको प्रणाम करूँ ?

हे भारत ! जहाँ भी शान्ति का स्वर सुनायी दे, वह तेरा है। जिस मनुष्य के हाथ में धर्म का दीपक हो (अर्थात जो धर्मानुसार चलता हो), वह तेरा अपना है। वह वीर भी तेरा है जो सत्य पर अड़ा रहता है और न्याय की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। मानवता के भाल पर सुशोभित इस चन्दन की क्या मैं बन्दना करूँ ? हे भारत ! मैं किसकी बन्दना करूँ ? मैं किसको प्रणाम करूँ ?

देवता की मांग

यह असीम प्रगति ! मानव का यह अभूतपूर्व विकास ! आज उसके पैरों के नीचे भूगोल आ गया है, और निखिल आकाश को उसने अपनी मुट्ठी में

कर लिया है। (जल-थल-आकाश पर मानव ने विजय प्राप्त कर ली है विज्ञान के सहारे ।)

लेकिन मनुष्य की इस भौतिक प्रगति में मस्तिष्क ही पूर्णतया आगे बढ़ता रहा है, हृदय का देश तो पीछे ही छूट गया है। (आज तक की वैज्ञानिक प्रगति मानव के मस्तिष्क की देन है। लेकिन मनुष्य के पास सिर्फ मस्तिष्क ही नहीं है, हृदय भी है हृदय की उपेक्षा के कारण ही विश्व में प्रेम और सद्भावना का प्रसार नहीं हो पाया और इसलिये सर्वत्र अशान्ति है।) मनुष्य आज रोज बुद्धि के नये त्यौहार मनाता है। (नित्य नये नये आविष्कार होते हैं।), किंतु उसके हृदय में देवता दुख से चीत्कार कर रहे हैं। (देवत्व और पशुत्व का निवास मनुष्य के अन्तर में ही है। जब पशुत्व प्रबल होता है तब हिंसा और अनाचार बढ़ते हैं। ऐसी स्थिति में देवत्व पीड़ा से कराहे, यह स्वाभाविक है क्योंकि वह तो सद्भावों का प्रतीक है।)

वे देवता ज्ञान के भूखे नहीं हैं, भावना के भूखे हैं वे कुछ स्नेह माँगते हैं और बलिदान माँगते हैं। मोम जैसी कोई ऐसी मुलायम चीज (करुणा की सुकुमार भावना) वे चाहते हैं जो गर्म होते ही मन में पिघल उठे। प्राणों के इस झुलसे वन में कुछ कोमल फूल, शुष्क ज्ञान के रेगिस्तान में सकोमल भावना की धार, चाँदनी की मधुर रागिनी, प्रभात की कुछ मुस्कान और नींद में भूली हुई-सी बहती नदी का गान उन्हें चाहिए। कली जो रहस्य अपने अन्दर छिपाये रहती है वह खिलते समय रंगों में प्रकट हो जाता है, इसलिए खिलती कली का वह रहस्य, दर्द की वह तस्वीर जो आँसुओं में गलती रहती है (हृदय की वेदना आँसू बनकर निकल पड़ती है) और पराग रस में सराबोर फूलों की जंजीर (मधुर प्रेम का बंधन) उन्हें चाहिए।

यह जो संसार में धुएँ और धूल के बादल छाये हैं, कोलाहल मचा है तथा लोग थके-ऊबे-से हैं—इनसे परे शीतल जल की कोई ऐसी धारा मिले जो धीमी गति से बहती हो और जिसके तट पेड़ की सुखद छाया में मन को कुछ आराम का अनुभव हो। जहाँ पर मनुष्य कुछ छुट्टियाँ और शाम गुजार सके।

कामों की भीड़ वाली सांसारिक जिन्दगी से कुछ समय छीन कर मानव जहाँ पर बैठ जाए और अपने आप में डूब जाए—जिस तरह फूल एकान्त में अपना हृदय खोलते हैं, उसी तरह वह भी दिन भर की कमाई का लेखा-जोखा उस एकान्त संध्या में कर सके। (जीवन में क्या खोया और क्या पाया है, इस पर चिन्तन करे।)

शरीर को सुख का जितना भाग मिलना चाहिए था, उससे भी अधिक वह ले चुका है। अब तो देवता मन के लिए ही एक छोटा-सा गृह चाहते हैं जहाँ उसे चैन मिले और शांति का अनुभव हो। हाय रे मानव! नियति का तू दास हो गया है। हाय, रे मनु पुत्र! आज तू अपना उपहास करा रहा है। प्रकृति की रहस्यमयता पर विजय प्राप्त कर, सागर से लेकर आकाश तक को भयभीत किये, अखिल सृष्टि को अपनी बुद्धि के बल से नापता हुआ, परमाणु के असीम अस्तित्व को चीरता हुआ, अजेय बना और बुद्धि की आंधी में असहाय स्थिति में मजबूर होकर तू किस दिशा की ओर जा रहा है? तेरा लक्ष्य क्या है? उद्देश्य क्या है? तेरे इस अभियान का अर्थ क्या है? अगर तुझे यह मालूम नहीं है, विज्ञान की सारी दौड़-धूप बेकार हैं।

तू आकाश पर चढ़कर नक्षत्रों और तारों की आवाज़ सुन रहा है, लेकिन एक छोटी सी बात ही तुझे याद नहीं पड़ती। बात बहुत छोटी, बहुत सीधी है और वह यह कि विश्व में वासना की रात छायी हुई है। वासना की यह रात्रि ऐसी है जिसके अंधकार से पराजित होकर भ्रमित मानव अपने आप को ही अपना भोजन बना रहा है—स्वयं ही अपने विनाश का कारण बनता जा रहा है। इसकी बुद्धि में तो आकाश की सुगँध है, किन्तु शरीर में रक्त के कीचड़ हैं। (विज्ञान आज संहारक बन उठा है।) यह वचनों से देवता है, लेकिन कर्म से नीच पशु है।

यह मनुष्य है जिसका विमान आकाश में जा रहा है, जिसके करों को देखकर परमाणु भी कांपते हैं (परमाणु में अनन्त शक्ति है पर उसे भी मनुष्य ने अपने वश में कर लिया है।) और जिसको पर्वत, सागर, पृथ्वी और आकाश

अपना हृदय खोलकर अपना छिपा हुआ इतिहास सुना चुके हैं। प्रकृति के सारे रहस्यमय आवरण हट गये, अब जानने के लिए यहां और क्या रह गया है ? लेकिन नहीं, मनुष्य को तो नित्य ऐसी बाधाएँ चाहिएँ जिन पर वह बड़ी कठिनता से विजय प्राप्त करे। (मस्तिष्क की समस्याएँ सुलझ गईं एक हद तक, अब हृदय की समस्याएँ सुलझाने में मानव लग जाय ताकि बुद्धि और भावना का संतुलन हो।) सोचने और करने के लिए उसे 'नया' सघर्ष चाहिए, विजय का नया क्षेत्र चाहिए और पाने को नया उत्कर्ष चाहिए !

लोहे के पेड़ हरे होंगे

तू प्रेम के गीत गाता चल, लोहे के यह निर्जीव पेड़ एक दिन अवश्य हरे होंगे (आज का संहारक विज्ञान एक दिन मनुष्य के लिए वरदान बनेगा, भौतिकता का पुजारी मानव एक दिन अपनी ध्वंसलीला और स्वार्थपरता आदि को छोड़कर प्रेम का पुजारी बनेगा।) यह सूखी धरती जरूर गीली होगी, तू आंसू के कणों की वर्षा करता चल !

(१)

आकाश मानवों के क्रन्दन और चीख-पुकारों से चाहे जितना भी भरा हो, धरती पर नरकंकालों का चाहे जितना भी बड़ा ढेर लगा हो और नरमुंड बिखरे पड़े हों, फिर भी पवन को आशा के स्वर का भार वहन करना ही होगा और जीवित स्वप्नों के लिए मुर्दों को मार्ग देना ही होगा। रंगों के सातों घड़े उंड़ेल-कर यह अँधियाली एक न एक दिन अवश्य सतरंगी रंग में रंग जाएगी। तू इस अंधकार में उषा की कल्पना को साकार करने के लिए आकाश में कुंकुम बिखेरता चल।

(२)

आज आदर्शों से आदर्शों का संघर्ष हो रहा है, एक ज्ञान पर दूसरा ज्ञान हावी हो रहा है और मूर्तियाँ आपस में लड़ती हैं। इस प्रकार धरती की मानो किस्मत ही फूटी जा रही है। उलझनों का विषम जाल फैला है जिसमें बुद्धि

विवश होकर चकरा रही है। ऐसा लगता है कि विज्ञान के विमान पर बैठी हुई आज की मानव-सभ्यता सागर की गहराई में डूबने जा रही है। जब-जब मस्तिष्क की विजय होती है, यह संसार ज्ञान से जलने लगता है। शीतलता की राह तो वस्तुतः हृदय है, यही संदेश तू सबको देता चल !

(३)

आज संसार का सूरज ऐसा लगता है, मानो बुझा जा रहा हो। चन्द्रमा भी फीका लगता है। सबके प्रयत्न व्यर्थ गये किंतु इनमें पहले जैसा आलोक नहीं जगता है। ऐ जादूगर (कवि के पास भावना का जादू रहता है। भावना के सहारे वह संसार को बदल सकता है। इसीलिए यहाँ जादूगर कहा है।) इन उदास ग्रहों के प्राणों में तू कोई नवीन ज्योति भर दे, अपने हृदयरूपी दर्पण पर घिसकर इन्हे ताजा कर दे। जब दीपक के प्राण जलते हैं, तभी दीपावली का सुहावना दृश्य उपस्थित होता है। संसार को प्रकाश देने के लिए तू अपनी हड्डियों को जलाता चल !

(४)

उनको देखकर तू क्यों चकित होता हैं जो खुशियों में अपने को भूले हुए हैं और फूलों को सोने-चाँदी के तारों में गूँथ रहे हैं (अर्थात दौलत से कला को खरीद रहे हैं।) तू मानवता का पुरोहित है, गंध और सौंदर्य का आदि पुजारी है। हे वेदना पुत्र (वेदना ही कवि की जननी है) ! तू तो केवल जलते रहने का ही अधिकारी है। (भौतिक ऐश्वर्य का तुम्हारे लिए कोई मोल नहीं।) किसी सरोवर में अगर कोई हँसता-सा चाँद मिले तो उसे खुशी से उठा ले, लेकिन अपने हृदय के दर्पण पर कवितारूपी फूलों की रचना करके उसकी कीमत भी अदा करता चल !

(५)

शरीर की यह धूम-धाम आखिर कितने दिन चलेगी ? यह तो ऐसी ज्योति है जो दो दिन चमक कर बुझ जाती है, लेकिन आत्मा अमृत का पान करती हुई, मृत्यु के ऊपर भी अपना झंडा उड़ाती है। (शरीर नश्वर है, आत्मा

अमर ।) जो सुन्दर हंस सरोवर में जल के ऊपर क्रीड़ा कर रहा है, वह सँसार को लेने दे । तेरा हंस तो जल के दर्पण में नीचे-नीचे चलता है । (तुझे अन्तर्मुखी होना है, संसार को बाह्य सुखों के पीछे दौड़ने दे ।) फूलों से सुनहली धूल (स्वर्ण-पराग) एक दिन झड़ जायगी, रंग भी उनका जाता रहेगा, उन का सार तो सिर्फ सौरभ है जिसे तू संसार के लिए जमा करता चल ।

(६)

उनसे अपनी क्या होड़ लगाता है जो अमरता से अनभिज्ञ हैं, जिन्हें सौन्दर्य से परिचय नहीं है और न जिनको भावना के संसार का पता है । जो चतुर लोग चांद का रस निचोड़ कर अपने मधुपात्र भर रहे हैं और फूलों की भट्ठियां चढ़ाकर उनसे इत्र निकाला करते हैं (अर्थात् सौन्दर्य को अपनी भूखी वासना का शिकार कर रहे हैं), वे भी कभी जरूर जागेंगे । लेकिन अभी तो आधी मनुष्यतावालों पर पहले की ही भांति मुस्काता चल ! (आधी मनुष्यता वालों से संकेत है विज्ञान का बल और ऐश्वर्य के मद में चूर पश्चिम के भौतिकवादी लोग ।)

(७)

सभ्यता के अँग पर भीषण घाव है (युद्धों का), यही आज के अर्धमानवों की शक्ति है । हम रो-रोकर उसे भरते हैं क्योंकि हमारी आंखों में गंगाजल है । वे ईसा को शूली पर चढ़ाकर भी (उतने बड़े कलंक का टीका मस्तक पर होने पर भी) गर्वित हो रहे हैं और एक हम हैं कि मृतक को भी जिलाने के लिए काल्पनिक सौन्दर्य लोक में ले चलते हैं । जो कड़ी धूप में मरता है वह चांदनी में जीवन धारण करता है, इसलिए आज प्रकाश से पीड़ित मानव के मन में गोधूलि को बसाता चल—ज्ञान से दग्ध मानव को भावना की शीतलता प्रदान कर ।

(८)

यह उनकी एक नयी लीला देख, उन्होंने फिर एक नया कमाल किया है । गांधी के रक्त से भारतरूपी महासमुद्र को लाल कर दिया है । राम जी उठे,

कृष्ण जी उठे (उनके आदर्श जीवित हो उठे) और भारत की मिट्टी यह सोचकर रोती है कि क्या हो गया जिससे प्यारे गाँधी की लाश पुनः जीवित नहीं होती है ? तलवार जिन्हें मारती है, उन्हें बांसुरी नया जीवन प्रदान कर देती है, ऐ जीवनी-शक्ति के अभिमानी ! यह चमत्कार भी तू दिखाता चल !

(६)

धरती के सौभाग्य पुन: जागेंगे, भारती अमृत की वर्षा करेगी। दिन की प्रचँड दाहकता पर सुशील चांदनी छा जायगी। ज्वालामुखियों के कँठों से ज्वाला और गर्जना नहीं निकलेगी, वल्कि सुन्दर गान मुखरित होंगे। आकाश वर्षा के बादलों से भरा रहेगा और सँसार फूलों से। यंत्रों द्वारा निर्मित वेजान और गूँगी मूर्तियां भी एक दिन बोलने लगेंगी। हे शिल्पी ! तू मुँह खोल-खोलकर सब के भीतर जीभ विठाता चल।

——:०:——

('आधुनिक पद्य भाग'——समाप्त)

वे सब आकस्मिक हैं। (इनकी चिंता क्यों करें ?) अब भी चलने का समय शेष है, इसलिए चलते चलो।

मनुष्य के लिए यह ज़रूरी है कि वह हिम्मत कभी न हारे और जहाँ तक हो सके अपने कामों को सँवारने की कोशिश करे। (किसी और का मुहताज न बने।) खुदा के सिवाय वह और सब प्रकार के सहारों को छोड़ दे या त्याज्य समझे, क्योंकि यहाँ दुर्बल और बलवान सभी मिटनेवाले हैं, क्षणभंगुर हैं। जब कठिनाई का वक्त आये तब तुम मदद खोजने के लिए अगल-बगल नहीं देखो। अपनी जिन्दगी की गाड़ी को तुम हमेशा खुद चलाओ, अपनी शक्ति पर भरोसा रखो।

ग़ज़ल

शब्दार्थ :—मिल्लत = मेल-जोल; ज़ियादा = ज्यादा, अधिक; मुबादा = कहीं ऐसा न हो; नफ़रत = घृणा; तकल्लुफ़ = दिखावे का शिष्टाचार; अलामत = निशानी; बेगानगी = परायापन; रखने = दोष, बुराई; नसब = ख़ानदान, वंश-परंपरा; रजालत = नीचता; इल्म = बुद्धि, समझदारी; इकतसाबे शराफ़त = शराफ़त अर्थात् सज्जनता में वृद्धि; नजा़वत = कुलीनता; फ़राग़त = निश्चिंतता; राम = सेवक, आज्ञाकारी; अहवाल = हाल का बहुवचन रूप, विवरण; दादो-दहिश = दानशीलता; ख़िस्सत = कंजूसी; सख़ावत = उदारता; बदज़न = दुश्मन; इफ़लास = गरीबी; नफ़रत = घृणा; उल्फत = प्रेम; वहशत = भय; फरिश्ता = देवदूत; याँ = यहाँ; पै = परन्तु; मोहलत = अवधि; ध्रुपत = ध्रुपद नाम का एक राग-विशेष।

संदर्भ :—मौलाना हाली हर चीज कोई उद्देश्य सामने रखकर लिखते थे। कल्पना की निरर्थक कलाबाजियाँ उन्हें पसन्द नहीं थी। यही कारण है कि उनकी गजलों में सीखने लायक बहुत-सी बातें रहती हैं। इस गजल में बड़ी खूबसूरती के साथ उन्होंने नीतिपूर्ण हिदायतें भर दी हैं। वे कहते हैं—

भावार्थ—आपस में इतना अधिक मेल न बढ़ाओ, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि घृणा ही अधिक पैदा हो जाए। पराएपन की निशानी दिखावे का

व्यवहार या ऊपरी शिष्टाचार है, इसलिए शिष्टाचार की आदत अधिक न डालो। ऐ दोस्तो ! अगर यह चाहते हो कि लोग तुम्हारी इज्जत करें तो पहले अपने आपकी इज्जत करना सीखो। किसी के खान्दान या कुलीनता में दोष नहीं निकालो, क्योंकि इससे अधिक नीचता और कुछ नहीं है। इल्म के द्वारा या समझदारी के साथ अपनी सराफत (सज्जनता) में वृद्धि करो, कुलीनता से इस तरह की शराफत अच्छी है। निश्चिन्त होकर इस दुनियाँ में कभी न बैठो अगर तुम निश्चिंतता जीवन में प्राप्त करना चाहते हो। संसार मीठी जबान से आज्ञाकारी सेवक बन जाता है और इसमें संपत्ति भी कुछ खर्च नहीं करनी पड़ती। अपनी मुसीबत का विवरण हरएक से कहते रहना तो मुसीबत से भी बड़ी मुसीबत है। अपनी दान-शीलता की चर्चा कम किया करो, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि उससे तुम्हारी कृपणता ही सिद्ध हो जाए। अपनी उदारता को सीमा से बाहर न ले जाओ, नहीं तो एक दिन फिर तुम ही दूसरों की उदारता के मुहताज बन जाओगे। अपनी मुहब्बत को इतना अधिक न प्रकट करो कि कहीं तुम्हारे दोस्त ही दुश्मन बन जाएँ। अगर चाहते हो कि गरीबी में इज्जत के साथ रहें तो अमीरों से अधिक मेल नहीं बढ़ाओ। जो संपत्ति से अधिक घृणा करते हैं, वे मानों अपनी गरीबी को छिपाते हैं। संसार से प्रेम करना और भय खाना भी जरूरी है, किंतु न प्रेम सीमा से अधिक होना चाहिए, न भय भी अधिक। मनुष्य बनना देवता बनने से भी अच्छा है, किंतु इसमें मिहनत बहुत अधिक करनी पड़ती है। इस संसार में हम जमाने के हाथों मुफ्त ही बिक गए, किंतु अन्त में जब देखा तो यह लगा कि यह कीमत (मुफ्त बिकने की:—संसार में आकर पाना कुछ नहीं और खोना सर्वस्व) भी अधिक है। ऐ अक्ल ! साँसारिक पचड़ों में रहते ही आखिर उम्र कट गयी, अब और अवधि शेष नहीं रह गयी है। हाली खुद को कहते हैं कि तेरी गजल उतनी सुन्दर और असरदार नहीं हैं, बस अब और अधिक ध्रुपद का आलाप न करें। (बेकार बकबक करने से अच्छा है कि मौन रहें।)

खुदा

शब्दार्थ:—रोशन = प्रकाशित, उजवल; कुव्वत = शक्ति; कमी-बेशी =

घटती बढ़ती; तावे = वशीभूत, अधीन; फलक = आकाश; इन्तजामों हुक्म = व्यवस्था और आज्ञा; पैदाइश — उत्पत्ति; हमीं = हम ही; अजल = मृत्यु; आमाल = कर्म; दर्जा = पद; इम्तहाँ = परीक्षा; दारे फ़ानी = नश्वर संसार; बुज़ुर्ग = बड़े-बूढ़े; अदब = लिहाज, शिष्टता; औसाफ = गुण, विशेषता; निस्बत = संबंध में; मजाहिब में = धर्मों में; इशारा = संकेत।

संदर्भः — महाकवि 'अकबर' उर्दू साहित्य में अपने प्रभावशाली व्यंगात्मक शेरों के लिए प्रसिद्ध है। वे सुधारवादी और आस्तिक थे। भगवान या खुदा पर उन्हें विश्वास था। अपने उसी विश्वास को उन्होंने इस कविता में व्यक्त किया है और ईश्वर की महिमा बतलायी है। वे कहते हैं—

भावार्थः—खुदा या ईश्वर का नाम सर्वत्र प्रकाशित है, उसका नाम हमें प्यारा लगता है। लोगों के हृदयों को शक्ति इसी से मिलती है, और जबानों का सहारा मिलता है ताकि हम बोल सकें। खुदा के ही आदेश से रात और दिन घटते-बढ़ते रहते हैं और उसी की आज्ञा से बँधा हर तारा आकाश में जग-मगाता है। उसी की व्यवस्था और आज्ञा से ऋतुएँ बदलती रहती हैं। वह खुदा ही है जिसने समय पर विभिन्न दिशाओं की हवाओं को प्रकट किया है। उसी की आज्ञा से फल और अनाज पैदा होते हैं। धरती पर बादलों से पानी उतारने वाला भी वही है। जब तक यह साँस चलती है तब तक तुम यह समझते हो कि मैं बहुत कुछ हूँ किंतु जब सिर पर मृत्यु आ जाती है तब हमारा क्या बस चलता है? अगर इस संसार में तुम्हारे कर्म अच्छे हैं तो अवश्य ही ऊँचा दर्जा मिलेगा। (तुम्हारा नाम अमर हो जाएगा)। यह समझ लो कि इस नश्वर संसार में तुम परीक्षा देने के लिए आये हो। बड़ों का आदर, खुदा का भय और आँखों में लज्जा—इन्हीं गुणों के संबंध में संसार के धर्मों में संकेत मिलता है (इन्हीं गुणों के बल पर मनुष्य सच्चे अर्थों में धार्मिक कहला सकता है और ऊँचा उठ सकता है।)

रुबाइयाँ

शब्दार्थः—सीना = दिल, छाती; वो = वह, सामाँ = सामान; बेखबर = निश्चिंत; रुह = आत्मा; या रब = या खुदा; जीस्त = जीवन; आसाँ = आसान;

जहाँ = संसार; गफलत = भूल; बेशुमार = असंख्य; बीना = देखनेवाली; जीना = सीढ़ी; नेचुरल = Natural स्वाभाविक; शदीद = बहुत बड़ा; ऐब = दोष, बुराई; कीना = द्वेष, जलन; रिश्वत = घूस; गलूए-नेकनामी = नेकनामी का गला; ऐय्याशी = विलासिता; बदी = बुराई; हरचन्द = यद्यपि; बेमहल = बेमौका; गुस्ताख = अशिष्ट; सनअतो जराअत = उद्योग और खेती; इन्कलाब = क्रांति या परिवर्तन; हैराँ = हैरान; परेशान; मलक = फरिश्ता; बशर = आदमी; तसकीं = तसल्ली; खयाल = विचार; फसाना = कहानी; अव्वल=पहले; वाकफ़ियत = जानकारी ज्ञान; नाज = अभिमान; खुला = भेद प्रकट हुआ।

संदर्भः—रुबाई वह प्रसिद्ध फारसी छन्द है जिसमें उमरखैयाम ने जिन्दगी के मधुमय गीतों की रचना की थी। अकबर मधु या साकी के पुजारी नहीं थे, इसलिए उनकी रुबाइयों में मधु छलकने की जगह नैतिक शिक्षाओं ने ले ली है। जीवन को ऊँचा उठाने के लिए किन बातों पर अमल करने की आवश्यकता है, उनका उल्लेख करते हुए, वे कहते हैं—

भावार्थः—ऐ खुदा मेरे दिल में ईमान का दीपक प्रदीप्त कर दे और वह दिल हमेशा तुझ पर ही लगा रहे। ऐसा सामान मेरे लिए सुलभ कर दे। आत्मा को तेरी ऐसी लगन लग जाए कि वह दुनिया से बेखबर हो जाए—दुनियाबी सुख-दुख की चिंता से मुक्त हो जाए। इस प्रकार मेरे जीवन को आसान कर दे।

तुमसे क्या कहें कि मैंने संसार को किस रूप में पाया ? हर आदमी को मैंने भूलें ही करते देखा। आँखें असंख्य देखी, किंतु उनमें बहुत कम ऐसे थे जिन्हें असली दृष्टि प्राप्त हो।

उच्च अभिलाषाओं की सीढ़ियाँ रखो ताकि ऊँचाई पर चढ़ सको और मित्रों के सामने अपने दिल को सदा खुला रखो। किसी बात पर गुस्सा आना तो साधारण मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, किंतु सबसे बड़ी बुराई या दोष है किसी के प्रति दिल में जलन रखना।

घूसखोरी तो नेकनामी के गले पर छुरे के समान है (यश और प्रतिष्ठा उसमें नष्ट हो जाती है और आदमी बदनाम हो जाता है।) और बुराई के

पहिए की धुरी है विलासिता। जो विलासी बनेगा उसमें बहुत सारी बुराइयाँ आ जाएँगी। यद्यपि बेमौके की खुशामद बुरी है, मगर अशिष्ट आदमी खुशामदी से भी बुरा है।

पढ़ने से हरएक को नौकरी नहीं मिलती, यह कली (नौकरी रूपी) हर बाग में खिलनेवाली नहीं है (सबको नहीं मिलनेवाली है।) पढ़-लिखकर कुछ खेती और उद्योग की ओर तो ध्यान दो। ऐ दिल, इज्जत प्राप्त करने के लिए नेकी या सच्चरित्रता ही काफी। ऊँची नौकरियाँ प्राप्त कर ही प्रतिष्ठा मिलती है, यह गलत बात है। शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण होना चाहिए न कि नौकरी।)

क्राँति या असमय का परिवर्तन किसी के रोके कब रुकता है या उस पर किसी का कुछ वश कब चलता है ? देवदूत भी उससे परेशान हैं, बेचारे मनुष्य की क्या हस्ती ? मगर तसल्ली के लिए इतना ही सोचना काफी है कि जो कुछ है वह तो सब खुदा का है। हमारा यहाँ क्या है ? (समय के प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता। सबको खुदा की मर्जी समझकर संतुष्ट रहना चाहिए।)

हर एक आदमी से मैंने जिन्दगी की एक नयी ही कहानी सुनी और इस प्रकार एक लम्बे जमाने को हमने देख लिया। पहले तो यह हालत थी कि अपनी जानकारी पर हमें अभिमान था, किंतु अंत में यह रहस्य खुला कि हमने कुछ जाना नहीं—जानने लायक इतनी बातें हैं कि उसकी तुलना में हमारी जानकारी तुच्छ है। (अपने ज्ञान के मद में जब तक हम भूले रहते हैं, तब तक हम अज्ञानी ही होते हैं। वस्तुतः हमारे ज्ञान का परदा उस वक्त खुलता है जब हम अपने अज्ञान को देख पाते हैं।)

अशआर

शब्दार्थ—फालोअर = follower अनुयायी; बसर = निर्वाह; तालीम = शिक्षा; ख़ातूनेख़ाना = गृहस्थी; यादे-खुदा = ईश्वर की याद; दुआ = प्रार्थना; पाकिट = जेब; अर्ज़ी = नौकरी का प्रार्थनापत्र; ताऊन = प्लेग की बीमारी; वहशत = भय; आबादी = जनसंख्या; दानिस्त = जानकारी; पुन = पुण्य; कूवत =

शक्ति; शजरे-मुल्क = देशरूपी वृक्ष; बुन = जड़; तहरीके-स्वदेशी = स्वदेशी-आंदोलन; वज्द = तन्मयता; नग्मा = राग; गोली = तोप या बंदूक की गोली, दवाई की गोली; हज़्म करना = पचाना, हड़प लेना; गिज़ा = भोजन; चूरन = पाचक चूर्ण; मय = शराब; जौहर = खूबी; फ़क़त = सिर्फ़; मुफ़ीद = फ़ायदेमंद; खुदकुशी = आत्महत्या; लिट्रेचर = साहित्य; हिस्ट्री = History इतिहास; तर्क करना = छोड़ देना; कोफ़्त = दुख; राहे-मग़रिब = पश्चिमी सभ्यता की राह; वाँ = वहाँ; बढ़ती = तरक्की; आपकी = अपने आपकी, खुद की।

संदर्भ—अशआर 'शेर' का बहुवचन रूप है। इन शेरों में कवि ने जीवन के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं पर व्यंग किया है—

भावार्थ—ऐ आकाश! अंग्रेजी और जर्मन भाषाएँ तुझको ही मुबारक हो (हमारे काम की वे नहीं), लेकिन हमें तो उर्दू और हिन्दी में ही गुजर करना है।

नेताओं की धूम है, किंतु उनके पीछे चलनेवालों का पता नहीं। सब तो यहाँ जनरल या कप्तान ही बने हैं, आखिर सैनिक कौन है? (सभी लीडर बनने के लिए आतुर रहते हैं। जो कि काम वे करते हैं वह स्वभाविक कर्त्तव्य-भावना के वशीभूत होकर नहीं, बल्कि यश के लोभ से। शायर उन्हीं पर व्यंग क़रता है।)

लड़कियों के लिये शिक्षा जरुरी तो है, किंतु उन्हें घर की लक्ष्मी या सुयोग्य गृहणी बनाना है। पुरुषों की सभा में चहकनेवाली परी वे न बनें। ('सोसायटी गर्ल्स' की ओर संकेत है जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपनी घर-गृहस्थी से बेखबर होकर सभा-सोसायटी में व्यस्त रहने के बहाने मर्दों पर अपने रूप का जादू फेंकती रहती हैं।)

उनको (पढ़े-लिखे नौजवानों को) अब मुसीबत के दिनों में भी खुदा या ईश्वर की याद नहीं आती। मुँह से ईश्वर की प्रार्थना के बोल निकलने के बजाय उनकी जेबों से अर्जियाँ (नौकरी के प्रार्थनापत्र) निकलती हैं। (जमाना ऐसा हो गया है कि अब ईश्वर का ध्यान किसी को रहा ही नहीं, अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रणाली ने देश के नौजवानों को धार्मिकता से दूर कर दिया है। उन्हें चिंता सिर्फ नौकरी प्राप्त क़रने की रहती है।)

अकबर कहते हैं कि प्लेग की बीमारी से लोग क्यों इतना घबड़ाते हैं; यह तो जनसंख्या पर एक तरह का टैक्स है जो देश को चुकाना पड़ता है अंग्रेजी सरकार के लगाये अन्य टैक्सों की तरह। (उन दिनों टैक्सों की बाढ़ आ गयी थी और जनता परेशान थी, इसी पर व्यंग है।)

स्वदेशी आंन्दोलन से अकबर बहुत प्रभावित हुये थे, आगे के दो शेरों में वे उसी के बारे में कहते हैं:—

मेरी जानकारी में तो यह काम (स्वदेशी आन्दोलन) पुण्य के कार्यों में आता है। यह देश रूपी वृक्ष की जड़ को शक्ति प्रदान करेगा।

स्वदेशी आंदोलन का जो यह सुन्दर राग देश में छिड़ा हुआ है उसे सुनकर मैं तन्मय हो गया हूँ। ('देश की धुन में' का एक और विशिष्ट अर्थ में प्रयोग हुआ है। 'देश' राग का भी नाम है और धुन का अर्थ है तर्ज या गाने का एक विशेष ढंग।)

वे (अंग्रेज) तोप और बंदूक की गोलियों के बल पर संसार को हजम करते जा रहे हैं—एक-एक कर दुनियाँ के देशों को हड़पते हुए अपना उपनिवेश बनाते जा रहे हैं। ठीक ही है, इस तरह के भोजन को पचाने के लिए कोई इससे अच्छी पाचक चूर्ण है भी नहीं। (लोग ज्यादा खाने पर बदहज्मी दूर करने के लिए पाचक चूर्ण की गोलियाँ खाते हैं, अंग्रेज भी संसार रूपी भोजन को पचाने के लिए बंदूक की गोलियों का इस्तेमाल करते हैं—उन्होंने जो इतने उपनिवेश बना लिये सो शस्त्रों के बल से और डरा-धमका कर!)

शराबखोरी का विरोध करते हुए आगे कवि कहता है—अपने देशवासियों से शराब की सिफारिश मैं कैसे कर सकता हूँ, वह तो भले आदमी को भी शैतान जैसा बुरा बना देती है।

इसमें (शराबखोरी में) सिर्फ एक ही खूबी फायदे की है और वह यह कि इससे आत्महत्या करना आसान हो जाता है। (शराब पीकर आदमी जिन्दा रहते मृतक सरीखा हो जाता है; सारी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों को भुलाकर बेहोशी को बुलाना एक तरह से आत्महत्या ही है।)

—:—

अपने साहित्य को पढ़ना छोड़ दे और अपना इतिहास भी भूल जा तथा शेख और मस्जिद से भी नाता तोड़कर स्कूल में भर्ती हो जा। (कवि का आशय यह है कि अंग्रेजी शिक्षापद्धति देश के नौजवानों के लिए उपयुक्त नहीं है। उनके चलाये हुए स्कूलों में जाकर वे अपने देशीय साहित्य का अध्ययन नहीं करते इतिहास पर अभिमान करना भूल जाते हैं और अपने धर्म को भी तिलांजलि दे देते हैं।)

अंग्रेजी शिक्षा ने हमारे देश के नौजवानों को महत्वाकांक्षाहीन बना दिया और उनके जीवन का लक्ष्य सिर्फ दफ्तरों में नौकरी करके पेट पालना रह गया। उन्हीं को संबोधित करते हुए कवि कहता है—चार दिन की तो यह जिन्दगी है, बेकार गमगीन या दुखी होने से क्या लाभ ? डबल रोटी रोज खा और क्लर्की करते हुए खुशी से फूला रह ! (देश और समाज के प्रति अपना फर्ज अदा करने लायक तो तू रह ही नहीं गया है। रोटी और नौकरी में ही तेरा जीवन सीमित हो गया है।)

पश्चिमी सभ्यता के पथ पर जाकर हमने देश के ये नौजवान लुट गये। हमसे भी अलग हो गये और वहाँ तक भी नहीं पहुँच पाये। (पश्चिमी सभ्यता की नकल करके न तो ये अंग्रेज-जैसा बन सके और न भारतीयता के आदर्श से ही इनका सम्बंध रहा।)

आज देश की हालत यह है कि लोगों को न तो पुण्य कमाने का (अच्छे काम करने का) शौक रहा है और न उनके पास पाप का ही बल है (अंग्रेजों का बल पाप द्वारा ही अर्जित है। आशय है कि हमारे देश के लोग न पुण्यात्मा रहे, न ताकतवर ही, फिर अवनति क्यों न हो ?) यहाँ सब लोग अपनी अपनी अलग स्वार्थ सिद्धि की कामना में लगे रहते हैं—देश या समाज की तरक्की पर कोई ध्यान नहीं देता, सब अपनी तरक्की के पीछे पागल हैं !

नया शिवाला

शब्दार्थ :—शिवाला = मंदिर, शिवालय ; बरहमन = ब्राह्मण, पुजारी ;

गर=अगर ; सनम-कदों=मन्दिरों ; बुत=मूर्ति ; जंगो-जदल=लड़ाई-झगड़ा ; वाइज=धर्मोपदेशक ; दैरो-हरम=मंदिर-मस्जिद ; वाज=धर्मोपदेश ; मूरतों=मूर्तियों ; खाके-वतन=देश की मिट्टी ; जर्रा=कण ; गैरियत=परायापन ; बिछड़ों=जो अलग या बिछुड़े हुए हैं ; नक्शे दुई=अलग अलग रहने के चिन्ह ; मुद्दत से=लम्बे अर्से से ; दामाने-आसमाँ=आसमाने के नीचे ; मन्तर=मंत्र, पवित्र गान ; मय=मदिरा ; शक्ती=शक्ति ; शानती=शांति ; भगत=भक्त ; मुक्ती=मुक्ति ; पिरीत=प्रीत, प्रेम ।

संदर्भ :—यह कविता उर्दू के स्वर्गीय महाकवि 'इकबाल' की एक सुप्रसिद्ध रचना है। इकबाल का उर्दू साहित्य में वही स्थान है जो बंगला में कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर को प्राप्त है। पाकिस्तान के हिमायती होने से पहले इकबाल कट्टर देशभक्त थे। उन दिनों वे हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बहुत जोर देते थे और दोनो के अंधविश्वासों एवं कुरीतियों का जोरदार खण्डन करते थे। इस कविता में उन्होंने मूर्तिपूजा या बुतपरस्ती का विरोध करते हुए यह संदेश दिया है कि सभी धर्मों के लोग परस्पर प्रेम के साथ रहें, इसी में देश की और संसार की भलाई है। वे कहते हैं—

भावार्थ :—ऐ ब्राह्मण! अगर तुझे बुरा न लगे तो मैं यह सच्ची बात कह दूँ कि तेरे मंदिरों की देव मूर्तियाँ पुरानी हो गयी हैं। (अब उनकी जरूरत नहीं है, नये युग के अनुकूल नये आदर्शों की स्थापना होनी चाहिए। पुरानी अंधरूढियों के भार को हम कब तक ढोते रहेंगे?) अपने ही लोगों से शत्रुता करना तूने इन मूर्तियों से सीखा है। (मूर्तिपूजा के फेर में पड़कर तूने विधर्मियों से नफरत करना शुरू किया और उनसे व्यर्थ ही शत्रुता मोल ले ली जब कि मनुष्यमात्र को आपस में प्रेम के साथ रहना चाहिए, इधर तेरा तो यह हाल और उधर मुसलमान धर्मोपदेशकों ने भी धर्म के नाम पर लड़ाई-झगड़े का वातावरण पैदाकर दिया मानों खुदा ने उन्हें हिंसा और बैर का ही पाठ पढ़ाया है। (धर्म के नाम पर यह सब अनर्थ देख कर) मैं तंग आ गया और आखिर में मस्जिद या मंदिर जाना ही छोड़ दिया। धर्मोपदेशकों के उपदेशों को मैंने तिलांजलि देदी और तेरी पौराणिक कथाओं पर भी विश्वास करना छोड़ दिया

पत्थर की बेजान मूर्तियों में ईश्वर निवास करता है, ऐसा तूने समझ रखा है। लेकिन मेरे लिए तो देश की मिट्टी का हरएक कण ही देवता है। मैं अपने देश को प्यार और श्रद्धा की नजर से देखता हूँ और उसी को पूजता हूँ। तू (मूर्तियों को छोड़कर) मेरे साथ आ और यह जो धार्मिक मतभेदों के कारण हम एक दूसरे को पराया समझने लगे हैं, इसे दूर कर दें—भ्रम के परदे को उठा दें ताकि सत्य बिलकुल साफ दिखायी देने लगे। जो अब तक अलग रहे हैं, उन्हें मिला दें और अलग रहने के कारण जो फूट पैदा हो गयी है उसे मिटाकर एकता का वातावरण उपस्थित कर दें। एक जमाने से दिल की बस्ती सूनी पड़ी हुई है, (प्रेम के देवता का निवास न होने के कारण हृदय-मंदिर सूना है) इसलिए आ मेरे साथ ताकि देश में एक नये शिवमंदिर का निर्माण हम कर दें। हमारा यह नया तीर्थ संसार के सभी तीर्थों से ऊँचा हो, इसलिए इस नये मंदिर के कलश को आकाश से मिला देना है। हर प्रातःकाल उठकर हम मीठे-मीठे मंत्रों का गान करें और सभी पुजारियों (देशवासियों) को प्रेम की मदिरा पिलाकर बेसुध कर दें। भक्तों के गीतों में शक्ति और शान्ति दोनों का निवास है—उन्होंने गीतों के जरिये जगत को प्रेम का संदेश दिया जिनसे मन को शक्ति भी मिलती है और हृदय को शांति भी। संसार के लोगों को मुक्ति प्रेम के जरिये ही मिल सकती है। (धार्मिक अंध-विश्वासों के कारण हम मूर्तिपूजा को मुक्ति या मोक्ष पाने का साधन समझते हैं यह गलत है।)

जुगनू

शब्दार्थ—काशानए-चमन = बागरूपी घर; अंजुमन = भीड़, सभा; महताब = चाँद; शब = रात; सल्तनत = राज्य; सफीर = राजदूत; गुर्बत = परदेश; गुमनाम = छिपा हुआ, अप्रसिद्ध; तुकमा = बटन; कबा = चोगा; नुमायाँ = प्रकट; पैरहन = पौशाक; हुस्ने-कदीम = प्राचीनतम सौंदर्य; पोशीदा = छिपा हुआ; कुदरत = प्रकृति; खिलवत = एकांत; जुल्मत = अंधेरा; गहन = ग्रहण; तालिब = चाहनेवाला; सरापा = सिर से पैर तक, सर्वांग।

संदर्भ—यह कविता भी डाक्टर इक़बाल द्वारा विरचित है। रात्रि के अंधेरे में जब असंख्य जुगनू चमकने लगते हैं तब उनकी शोभा अनोखी रहती है। कवि उसी दृश्य का वर्णन करते हुए कहता है—

भावार्थ—अंधेरे में जुगनू का चमकना ऐसा लगता है मानों बागरूपी घर में रोशनी जल रही है अथवा फूलों की महफिल लगी है और उसमें चिराग जल रहा है। या ऐसा भी हो सकता है कि आकाश से कोई तारा उड़कर धरती पर आ गया है अथवा सूरज ने जो निर्जीव किरणें दिन भर धरती पर बरसायी थीं, उन्हीं में प्राण आ गया और चमकते हुए इधर-उधर वे उड़ने लगीं हैं। या रात के राज्य में दिन का कोई राजदूत आया है जो अपने देश में तो अप्रसिद्ध था, लेकिन परदेश में आकर चमक रहा है। (अर्थात् दिन में तो सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश के कारण इनकी चमक दिखाई नहीं पड़ती थी, लेकिन रात होते ही चमक उठे।) या चन्द्रमा के चमकते चोगे से टूटकर कोई बटन धरती पर आ गिरा है अथवा सूरज की सुनहली पोशाक से दिन में जो कण झड़ते रहे वे ही अब प्रकट हो उठे हैं अंधकार में। प्राचीनतम सौंदर्य की यह एक छिपी झलक थी जिसको प्रकृति एकांत से उठाकर लोगों की भीड़भाड़ के बीच ले आयी है या यह तो गोया एक छोटा सा चाँद ही है। इस चाँद में अंधकार भी है और प्रकाश भी है, ऐसा लगता है कि कभी वह ग्रहण के कारण छिप जाता है और बाहर निकल आता है। (जुगनू स्थिर भाव से चमकते नहीं रहते, बल्कि बुझते और चमकते रहते हैं हमेशा।) जुगनू की तुलना दीपक पर जल मरनेवाले परवाने से करते हुए अंत में कवि कहता है—परवाना एक तरह का पतंगा है और जुगनू भी पतंगे की ही कोटि में आता है, किंतु दोनों में बहुत बड़ा फर्क यह है कि वह (परवाना) प्रकाश को चाहता है—दीपक पर जल मरता है, जबकि यह जुगनू सिर से पैर तक प्रकाश ही है।

फूलमाला

शब्दार्थ—रविशेख़ान = गलत रास्ता; तालीम = शिक्षा; नुमायश = दिखावा; रिफार्म = Reform पुनर्निर्माण; अन्दाज = ढंग या तरीका; बूए-

वफ़ा = सुशीलता की सुगंध; मुनासिब = उचित; ख़ाक = मिट्टी, राख; ग़ैरते-क़ौमी = जातीय लज्जा; खुद्‌परस्ती = स्वार्थपरता; लक़ब = पदवी या नाम; इख़लाक़ = शील; ईमान न लाना = विश्वास न करना; रंगोरोग़न = पाउडर व तेल आदि प्रसाधन सामग्री; मुबारिक़ = मंगलमय; नक्श = चिन्ह; जिल्लत = अपमान; रुख = चेहरा, मुख; पर्दए-शर्म = लज्जा का परदा या आवरण; नक़्द = धन; तफ़रीह = मनोरंजन; मक़रज = केन्द्र या अड्डा; मासूम = अबोध; नग़माये क़ौम = जातीयता का संगीत; लय = धुन; गो = यद्यपि; बुज़ुर्ग = बड़े-बूढ़े; ज़ईफ़ = वृद्ध; परलय = प्रलय; बचपने = लड़कपन या नादानी।

संदर्भ—उर्दू शायरी की राष्ट्रीय धारा में ब्रजनारायण 'चकबस्त' का महत्वपूर्ण स्थान है। सीधी-सादी ज़बान में देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखने के कारण उनको बहुत लोकप्रियता मिली थी। इस कविता में वे देश की शिक्षिता लड़कियों के नाम संदेश देते हुए कहते हैं—

भावार्थ—पुरुषों के गलत मार्ग पर तुम कभी अपने पाँव नहीं रखना। (वे नारी की भावुकता से फायदा उठाकर उन्हें गुमराह करते हैं, किंतु) तुम उनके बहकावे में पड़कर अपनी शिक्षा को कभी कलंकित नहीं करना। आज दिखावे या बाह्य-प्रदर्शन को ही उन्नति या पुनर्निर्माण की संज्ञा दी जा रही है (शिक्षा का उद्देश्य आन्तरिक विकास होना चाहिए, किंतु बाहरी टीम-टाम को ही आज शिक्षित होने का सबूत माना जा रहा है।) लेकिन तुम इस तरीके के धोखे में कभी न आना—बाहरी आडम्बर से दूर रहना।

ऐसे फूलों से तुम कभी भी अपने घर न सजाना जिनमें रंग तो है किंतु सुशीलता या मर्यादा की सुगंध नहीं है। (रूप-सौंदर्य से अधिक महत्व आन्तरिक गुणों का है।) यूरोप की अच्छाई की नकल अगर करो तो वह उचित ही है, किन्तु अपनी जातीय लज्जा को धूल में कभी न मिलाना, उसे कायम रखना।

जो स्वार्थपरता को स्वतंत्रता की पदवी देते हैं, ऐसे लोगों की शिष्टता पर कभी विश्वास न करना। (स्वार्थी पुरुष लड़कियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए पहले शिष्टता का अभिनय करता है, इससे सावधान रहने की आवश्यकता है।) साज-शृंगार के लिए तुम अगर यूरोप के पाउडर-तेल आदि

का इस्तेमाल करना चाहो तो करो, वह अच्छा ही है, लेकिन अपने चेहरे पर से जातीयता के चिन्ह को लुप्त न होने देना। (यूरोप की नारियों की तरह उच्छृं-खल न बन जाना, भारतीय नारी की मर्यादा पर स्थिर रहना।)

जो लोग तुम्हें प्रदर्शन का खिलौना बनाते हैं, उनकी खातिर या उन्हें खुश रखने के लिए यह अपमान कभी न भोगना। (नारी का रूप प्रदर्शन की चीज बन जाए, यह नारीत्व का निरादर है।) अपने चेहरे पर पर्दे का आवरण हटा दिया—घूँघट की प्रथा को तोड़ दिया—तो तुमने यह बहुत ठीक ही किया, किन्तु लज्जा के आवरण को अपने दिल पर से उठा न देना कभी भी। (क्योंकि नारी का प्रधान गुण उसकी लज्जा है, बेशर्म होने पर वह नारीत्व का पद खो बैठती है।)

हम पुरुष राजा नल की भाँति ही शील की दौलत हार चुके हैं अर्थात शील खो बैठे हैं, किन्तु तुम तो दमयन्ती हो, शील की दौलत को कभी भी लुटने नहीं देना। (नल के छोड़ देने पर भयंकर स्थितियों में भी दमयन्ती ने अपने शील की रक्षा की थी।) स्वतंत्रता का जो मन्दिर पूजा करने योग्य है उसे कभी भी मनोरंजन या दिल बहलाव का अडडा न बना देना—स्वतंत्रता आवश्यक है, किन्तु उच्छृंखलता का अर्थ स्वतन्त्रता नहीं है; इसे याद रखना।

राष्ट्र के पुरुषों को अपने बच्चों का ध्यान नहीं है, इनको सभाँलने की जिम्मेवारी तुम पर ही है। इन अबोध बच्चों को तुम कभी भी भूल न जाना—मातृत्व के कर्तव्य से विमुख न होना। इन बच्चों को ऐसा कोई राग कभी न सिखाना जिसमें राष्ट्रीयता के संगीत की धुन समा न पाये—अर्थात बच्चे अपने राष्ट्रीय या जातीय अभिमान को भूल न जाएँ, ऐसा प्रयत्न करना।

यद्यपि तुम्हारे बड़े-बूढ़ों में समय का रंग न हो (युग की माँग न समझ सकने के कारण तुम्हारा नया रवैया उन्हें पसन्द न आये) तो भी तुम इन वृद्धों को मजाक उड़ाकर रुलाना या दुखी न करना (हर हालत में बुजुर्गों की इज्जत करनी चाहिए।) अगर इनकी आँखों से आसूँ गिरेंगे तो प्रलय हो जाएगा, लड़कपन या नादानी के कारण तुम कभी यह तूफान न पैदा करना

अर्थात कभी भी बुजुर्गों को दुखी न करना, भले ही उनके विचारों से तुम्हारे विचारों का मेल न खाए।

हमारा वतन

शब्दार्थः—आँखों का तारा = प्यारा; दरख्त = वृक्ष; जमना = यमुना नदी; बहार = आनन्द, बसंत, सुहावनापन।

संदर्भः—महाकवि ब्रजनारायण 'चकवस्त' इस कविता के रचयिता हैं। उनके हृदय में देशप्रेम की भावना कितनी कूट कूटकर भरी थी, उसकी मिसाल यह कविता है। भारतवर्ष के आधुनिक वैभव का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

भावार्थः—यह भारतवर्ष हमारा देश है। हमारा देश प्रेम का प्यारा देश है अर्थात हमारे दिल में इसके प्रति बेहद अनुराग है। हमारा यह देश हमें अपने दिल से भी प्यारा लगता है, जी जान से हम इसे प्यार करते हैं।

प्राकृतिक दृष्टि से यह बहुत ही सुहावना है। यहाँ के वृक्ष निरन्तर बढ़ते रहने की तैयारी में लगे हैं। फल, फूल और हरे भरे पौधों से यहाँ की वाटिकाएँ भरी हुई हैं। हमारा यह देश हमें अपने दिल से भी प्यारा लगता है।

हवा के झोको से वृक्ष झूम रहे हैं, और हिलते हुए पत्ते बार बार फूलों का चुम्बन ले रहे हैं हमारा वह देश हमें अपने दिल से भी प्यारा लगता है।

सावन के महीने में काले मेघों की घटाएँ, सुहावनी लगती हैं और वर्षा के दिनों की हल्की-हल्की फुहार भी देखने लायक होती हैं। हमारा यह देश हमें अपने दिल से भी प्यारा लगता है।

वाटिकाओं में कोयल कूकती रहती है और बन में मोर नृत्य करते रहते हैं गंगा की लहरों की निराली शोभा और यमुना के प्रवाह का जोर भी देखते ही बनता है। हमारा यह देश हमें अपने दिल से भी प्यारा लगता है।

हमारे जीवन में जो आनन्द है वह इसी की बदौलत है चाहे इसे हम देश का प्रेम कहें या माँ का प्यार। हमारा यह देश हमें अपने दिल से भी प्यारा है।

स्नेहलता

शब्दार्थ :—सिन = उम्र; तेरा-चौदा = तेरह-चौदह; दिलरुबा = मनोहर; अन्दाज = हावभाव, अदा; मुखड़ा = चेहरा; वर = श्रेष्ठ वचन; शबाबो-सिन = जवानी की उम्र; इफ़्लास = गरीबी; आशुफ़्ता = घबड़ाया हुआ; सख्त = कठिन, कड़ा; कम अज़ कम = कम से कम; बेकस = मज़बूर; बार = बोझ; बसर = निर्वाह; दस्तगीरे-बेकसा = मजबूरों का सहायक; ईशवर = ईश्वर; चार में = लोगो में; शौहरो-जन = पति-पत्नी; मुश्किलात = कठिनाइयाँ; आबरू = इज्जत; फ़हमीदा = समझदार; गश खाना = बेहोश हो जाना; तुफ़ है = धिक्कार है, बिपता = विपत्ति; कम्बख्त = बदकिस्मत; सितम = अत्याचार; रंज-गम = दुख और शोक; अजराहे-करम = दया करके; किरिया-करम = श्राद्ध का क्रिया-कर्म। पै = पर; रोग़न = तेल; समअ = दीपक; काफ़ूर = कपूर; सोला-फ़ाम = अग्नि जैसे रंगवाली; तमाम = अंत।

संदर्भ :—सैयद अहमद हुसैन 'अमजद' की इस कविता में दहेज-प्रथा से होनेवाले कुपरिणाम का एक करुण और हृदयस्पर्शी चित्र उपस्थित किया गया है। यह बंगाल में घटित एक सच्ची घटना पर आधारित है। कवि कहता है—

कहीं पर एक लड़की थी जिसका नाम स्नेहलता था। उसकी उम्र तेरह-चौदह साल की थी। उसकी मनोहर अदा और चाँद-से चेहरे को कोई देखता तो तुरन्त किसी फारसी कवि का यह श्रेष्ठ वचन कह उठता—'तेरी आँखों की सुन्दरता से नर्गिस लजाती है और तेरे काले बालों की लटों ने जटामासी को परेशान कर रखा है।' (आँख की उपमा नर्गिस से और केशों की उपमा जटामासी से दी जाती है फ़ारसी में।) उसकी चढ़ती जवानी और उम्र को देखकर उसके बाप को शादी की चिंता होती थी, लेकिन वह गरीबी के कारण मजबूर था। वर की तलाश में जहाँ भी वह जाता, वहाँ लड़केवाले दहेज का कठिन प्रश्न सामने रख देते। वे कम से कम दो हजार रुपये की माँग करते थे और गरीबी के कारण मजबूर वह बाप कैसे इतना बड़ा बोझ उठा पाता ? वह चाहता था कि अपने रहने का मकान ही बेच डाले और बेटी के हाथ पीले कर दे। उसके बाद वह झोंपड़ी में ही निर्वाह करने के लिए तैयार था। वह सोचता

था कि जो-कुछ भार सिर पर आयेगा उसे अपने सिर पर उठा लूँगा, क्योंकि मजबूरों का सहायक या सहारा एक ईश्वर ही है। जैसे भी बने जीवन किसी तरह कट ही जाएगा, लेकिन अगर वेटी का विवाह नहीं किया तो लोगों में प्रतिष्ठा घट जाएगी। लोक-लज्जा के इसी भय से पीड़ित होकर एक दिन पति-पत्नी एक साथ मिलकर स्नेहलता की शादी के बारे में बातें कर रहे थे। वे कह रहे थे कि गरीबी में बहुत सारी कठिनाइयाँ आती हैं तथा आदमी की इज्जत तो संपत्ति पर ही निर्भर रहती है। पर्दे की आड़ में उस वक्त स्नेहलता खड़ी थी, उसके कानों में यह बात पड़ गयी। सुनते ही एक-दो क्षण के लिए सन्नाटे में आ गयी, लेकिन वह बचपन से ही बड़ी समझदार थी। कुछ सोच कर वह अपनी जगह पर आ गयी और आते ही बेहोश हो गयी। फिर होश आने पर वह अपने आप से कहने लगी—"आह, धिक्कार है मेरे जीवन को। मेरे ही कारण मेरे पिता पर यह मुसीबत आयी है। आह, मैं बदनसीब पैदा ही क्यों हुई कि मेरे कारण बाप पर अत्याचार हो और मेरी ही खातिर वे दुख-शोक झेलते रहें? मेरे लिए कम से कम बीस सौ या दो हजार चाहिए और वह रकम वे अपने घर को बेचकर प्राप्त करें? नहीं, कोई दया करके कह दे कि वे अब बेटी के श्राद्ध का क्रिया-कर्म करें—शादी की चिंता छोड़ दें।" इसके बाद उसने सिर पर तेल उड़ेलकर आग लगा दी और जलने लगी। मानों वह कपूर का दीपक थी जो धीरे धीरे आग के स्पर्श से गलने लगी। जीवन का मध्याह्न ढलने लगा अर्थात जवानी में ही मौत आ गयी, बुढ़ापा आने से पहले ही जिन्दगी का सूरज डूबने लगा। दुख से मानो मौत भी हाथ मल-मलकर पछताने लगी। अग्नि के समान जिसकी दमकती देह थी वह जल-भुनकर ठंडी हो गयी, राख हो गयी, निष्प्राण हो गयी! आखिर चाँद-जैसी जो सूरत थी वह नष्ट हो गयी—दहेज की बलिवेदी पर शहीद हो कर माँ-बाप को सदा के लिए चिंतामुक्त कर गयी।

बंशीवाला

शब्दार्थ :—नीलगूँ = नीला; बाग़ों-बन = बगीचे और जंगल; आलम = संसार; गुलफ़िशाँ = फूल बरसानेवाला; फ़िज़ा = मैदान; रंगो-बू = रंग और

Funding: Tattva Heritage Foundation,Kolkata. Digitization: eGangotri.

गंध; तूफ़ाँ=तूफ़ान; बिरज=व्रजभूमि; नज़ारे=दृश्य; जन्नती=स्वर्गीय; खयाबाँ=क्यारियाँ; सीन=दृश्य; सदा=ध्वनि, आवाज; नाजनीने आहू=मृगछौनी-सी तरुणी; नश्शागूँ=मदभरी; सब्जा=हरियाली; वादी=घाटी; नश्शा=मादकता; फ़ितरत=प्रकृति; इस दर्जा=इस तरह; उलफ़त=प्रेम; नग्मा=राग, गीत; रिषी=तपस्वी, ऋषि; मुनी=मुनि; मसरूफ़=निमग्न; तौहीद=परमात्मा; तलवों से आँख मलना=आदर करना; पयाम=संदेश; जलवागाह=शोभा का केन्द्र; गवाला=ग्वाला; आरज़ू=आकांक्षा, अभिलाषा; परेशाँ=परेशान, आकुल; गुलिस्ताँ=बाग।

संदर्भ :—उर्दू के रुमानी शायर स्वर्गीय अख्तर शीरानी की यह कविता है। बंशीधर कृष्ण और उनकी लीलाभूमि व्रज की शोभा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

भावार्थ :—बरसात का यह मौसम है और नीली घटाएँ आसमान पर छायी हुई हैं। यह हरे-भरे वनों और उपवनों का आलम चारों तरफ फैला है, मानों यह बहार फूलों की वर्षा कर रही है—हर तरफ हरियाली है और हर तरफ फूल खिले हैं। रस से भीगी-भीगी ठंडी हवा भी बहकर प्राणों को शीतल कर रही है।

खिले हुए रंग-बिरंगे फूलों के कारण ऐसा लगता है मानों रंगों और सुगंधों के तूफान आ गये हैं। ये व्रजभूमि के दृश्य हैं। यमुना के किनारे खेतों की क्यारियाँ फैली हैं और अपनी शोभा से स्वर्ग को भी लजा रही हैं। हर तरफ प्यारे प्यारे और लुभावने दृश्य नजर आते हैं।

कहीं कोयल कूक रही है, कहीं मोर की आवाजें सुनायी पड़ती हैं। कहीं मृगछौनी-सी भोली-भाली ग्रामबालायें चहक रही हैं, कहीं बेचारी (सीधी) गायें चर रही हैं। ये सब मदभरी अर्थात् मन को मस्त कर देनेवाली शोभाएँ हैं।

हरियाली से भरे खेत और मैदान निखरते जा रहे हैं, फूलों से भरी घाटी में सुगंध की लहरें उठ रही हैं। एक नशा-सा सारे वातावरण पर छाता जा रहा है। बुलबुल भी मीठे स्वर में चहक रही है, प्रकृति नशे में मस्त-सी मानों बहकी जा रही है।

ऐसे समय में यह कौन है जो बाँसुरी बजा रहा है ? इस तरह वह लय में मस्त होकर मानों प्रेम को लुटाता जा रहा है और रागों की ध्वनियों को जैसे हवा में बहाता जा रहा है।

शायद यह कोई ऋषि है जिसने सन्यास ले लिया है। दुनिया से विरक्त होकर अपने आप में लीन है। या शायद यह कोई मुनि है जो भगवान का कीर्तन करने में निमग्न है और भजन गा रहा है।

हाँ, आओ, जरा पास चलकर देखें कि वह कौन है और उसका क्या नाम है ? आदर के साथ यह पूछें कि वह किस उद्देश्य से आया है और इस मधुर संगीत के पीछे इसका कौन-सा संदेश है ?

लेकिन जरा ठहरो, इसको मेरी निगाहें पहचानती हैं—इसे मैंने पहले भी देखा है। प्रकृति की शोभा की जितनी केन्द्र-स्थलियाँ है, वे सब इसको अच्छी तरह जानती हैं और चाहती भी हैं। (यह प्राय: उन जगहों में क्रीड़ा करता रहता है जहाँ के प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर हैं।)

हाँ, हाँ, यह वही वंशीवाला है। मेरी नजर पहले चूक गयी थी। यह व्रज का ग्वाला है और नन्द का दुलारा मुरारी है। और हमारी आकांक्षाओं का केन्द्र भी है अर्थात हम सबका प्यारा है।

इसकी बाँसुरी से राग इस तरह निकल रहे हैं मानों वे उसके अन्दर परेशान हों और बाहर निकलने के लिए मचल रहे हों। या ऐसा लगता है जैसे सैकड़ों बगीचे करवट बदल रहे हैं और फूल उगलते जा रहे हैं—बगीचे हरे-भरे होते जा रहे हैं और फूलों से लदे जा रहे हैं।

संगतराश का गीत

शब्दार्थ :—संगतराश = शिल्पी। आदम = वह आदमी जिसे खुदा ने पहले-पहल पैदा किया था। हव्वा = आदम की स्त्री, हौआ। तराशना = छीलना। माबूद = उपास्य देवता। बन्दा = सेवक। जहन्नुम = नरक। जज़्बा = प्रबल इच्छा। तराना = गीत। फ़साना=कहानी। गुलशन=बाग। बुनियाद = नींव। हलकान=शिथिल। कश्ती = नौका। बेजान = निर्जीव। उकटना = सिमटना।

खाँचा = बड़ा पिंजड़ा। महदूद = सीमित या तंग। दामन = अँचल, कुर्ते आदि का निचला छोर।

संदर्भ :—साग़र निज़ामी उर्दू के मशहूर तरक्की-पसन्द शायर हैं। युगो से चले आते शोषण और उत्पीड़न को मिटाकर नयी दुनियाँ के निर्माण का स्वप्न आप हमेशा देखते रहे हैं। यह कविता संगतराश अर्थात् पत्थर काटकर मूर्तियाँ गढ़नेवाले शिल्पी के गीत के रूप में लिखी गयी है जिसमें वह नयी दुनिया के नवनिर्माण का संकल्प करता है। वह कहता है—

भावार्थ :—मैं नये आदम का निर्माण करूँगा और नयी हौआ भी बनाऊँगा। (पुराने आदम और हौआ का निर्माण दंतकथा के अनुसार खुद ईश्वर ने किया था, उनके वंशज तो हमेशा आपस में लड़ते रहे और एक दूसरे का शोषण करते रहे। लेकिन मैं जो नये मानव का निर्माण करूँगा, वह उनसे भिन्न होगा।) देवता भी पुराने न रहेंगे, मैं नये देवता का निर्माण करूँगा और उनके भक्त या उपासक भी बिल्कुल नये होंगे। इसी धरती की मिट्टी से मैं एक ऐसी नयी दुनियाँ बनाऊँगा जिसमें सब कुछ हँसता-सा लगेगा—कहीं भी क्रन्दन का शोर न होगा।

आज हर अणु अणु के दिल में भीषण नरकाग्नि जल रही है। न जाने कब से इस मिट्टी को यह प्रबल इच्छा रही है कि वह खुद बन जाए। (तुच्छ से तुच्छ भी इस बात के लिए आतुर हैं कि वे अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करें, असन्तोष की ज्वाला सर्वत्र व्याप्त है।) नयी दुनिया के हर सेवक को मैं देवता बना दूँगा। नये आदम का मैं निर्माण करूँगा और नयी हौआ भी बनाऊँगा।

मैं जो मूर्तियाँ बनाऊँगा उनसे जिन्दगी के गान फूट पड़ेंगे। मेरी बनायी हुई इन मूर्तियों से जीवन की नयी कहानियों का आरंभ होगा। आज का संसार जो गूँगे - सा दिखायी देता है, उसे मैं वाणी दे दूँगा। मैं नये आदम का निर्माण करूँगा और नयी हौआ भी बनाऊँगा।

मेरी इस दुनिया में धरती नयी होगी, आकाश नया होगा और तारे भी नये होंगे। जंगल नये होंगे, नये बाग होंगे, नयी नदियाँ होंगी और नये

किनारे होंगे। मैं वर्तमान दुनियाँ की नीवों पर ही एक नयी दुनियाँ का निर्माण करूँगा। मैं नया आदम बनाऊँगा और नयी हौआ भी बनाऊँगा।

हर एक तूफान द्वारा फेंकी हुई शिथिल लहरों में और पुरानी नौकाओं की राख तथा बेजान लहरों में ही मैं नयी नौका का निर्माण करूँगा। (क्रांति का तूफान आने के बाद सब-कुछ नष्ट हो जाता है, जो ध्वंसावशेष रह जाता है उसी पर नवनिर्माण संभव होता है।) मैं नये आदम का निर्माण करूँगा और नयी हौआ भी बनाऊँगा।

प्रकृति के पिंजरे में आखिर कब तक मानव की जिंदगी सिमटी रहेगी और दुनियाँ के तंग साँचे में मैं आखिर कब तक ढलता रहूँगा? (मेरी शक्ति असीम है, मैं कब तक प्रकृति के नियमों से बँधा रहूँगा? संसार भी पुरानी लकीर का फकीर है, ऐसा वातावरण है जिसमें मेरे व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाता।) मैं तो अब ऐसे साँचे का निर्माण करूँगा जिसमें यह संसार ही समा जाए। मैं नये आदम का निर्माण करूँगा और नयी हौआ भी बनाऊँगा।

हृदय की वेदना बनाकर जो आँसू अभी तक मेरे हृदय के पर्दे में ही छिपे हैं तथा जो आँसू हृदय का दर्द बनकर मेरे दामन पर ढुलक पड़े हैं—उन्हीं से मैं ऐसी दुनियाँ का निर्माण करूँगा जिसमें नयी जिन्दगी की चहल-पहल होगी। मैं नये आदम का निर्माण करूँगा और नयी हौआ भी बनाऊँगा।

पुजारिन

शब्दार्थ :—राज़ = रहस्य। साज़ = सजावट का सामान। हरि = भगवान। बतिया = बातें। खामोश = मौन। पैमाने रक्शाँ = नाचते प्याले। मयखाने रक्शाँ = नाचते मदिरालय। अनूप = अनुपम। मौज = लहर। नूर = प्रकाश, ज्योति। रुख़सार = गाल। रंगीं = रंगीन। टीका = तिलक। पाक = पवित्र। जबीं = माथा, मस्तक। रौशन = प्रकाशमान। नाज़ुक = कोमल। मोहन = मोहक। मंज़िल = विश्रामस्थल। बुतखाना = मंदिर। हासिल = प्राप्त। हस्ती = जीवन। नूर के तड़के = सबेरा होने से पहले। नज्ज़ारा = नज़र, दृश्य।

संदर्भ :—सागर निजामी अपनी इस कविता में एक पुजारिन के पावन सौंदर्य और उसकी भावमयता का मधुर वर्णन करते हुए कहते हैं—

भावार्थ :—ऐ पुजारिन, तू मंदिर का रहस्य है अर्थात् तू अपने आप में मंदिर का सारा रहस्य छिपाये हुए है। (मंदिर प्रेम और मानवता का प्रतीक है, तुझे देखकर भी मन में इन्हीं भावों का उदय होता है।)ऐ पुजारिन, तेरा निर्माण शायद प्रकृति ने अपने आपको सजाने के लिए किया है अर्थात तेरा सौंदर्य अनुपम है। तू प्रेमनगर की रहनेवाली है (प्रेम के भावों से तेरा हृदय ओत-प्रोत है)और तू हमेशा अपने प्रियतम भगवान काही नाम लेती रहती है। तू सीधी-सादी और भोलीवाली लगती है। तेरी बातों में अनोखा माधुर्य रहता है और तेरे अंगों की बनावट भी अनोखी है। तेरी गर्दन में तुलसी की पवित्र माला है और तेरे हृदय में एक मौन शिवालय स्थापितहै—शान्ति और पवित्रता का उसमें निवास है। तेरे ओठ इतने मादक हैं कि हिलते वक्त ऐसा लगता है मानों मधु के प्याले नाच रहे हों आँखों में भी इस कदर मस्ती है कि उनमें मदिरालय नाचते-से प्रतीत होते हैं। ऐ पुजारिन, तेरा रूप अनुपम है।

तेरी साड़ी से भीनी-भीनी सुगंध निकलती रहती है। साड़ी मानों मदिरा से सराबोर है और तू उसमें लिपटी है। (अर्थात् साड़ी की गंध मन को मस्त कर देनेवाली है, उसे पहनने के कारण तेरा रूप और भी मादक हो उठा है।) तेरी आँखों में जैसे यमुना की लहरें उठती रहती हैं, और बालों में गंगा लहराती रहती है। (आँखों की चंचलता और खुले हुए काले-काले बालों के हवा में लहराने की ओर संकेत है।) जब तू हँसती है तब तेरे चेहरे पर ज्योति फैल जाती है। तेरे पवित्र ललाट पर रंगीन तिलक इस भाँति शोभित है मानों आकाश पर प्यारा और उज्ज्वल सुबह का तारा चमक रहा हो। (सुबह का तारे से मतलब उस बड़े चमकीले तारे से है जो रात्रि के अन्तिम प्रहर में उदित है। उसे देखते ही लोग जान जाते हैं कि अब सवेरा होने ही वाला है।) तेरी दृष्टि में लज्जा और भोलापन है तथा बाहें गोरी और सुकुमार हैं। ऐ पुजारिन, तेरा रूप किसी स्वर्गीय देवी के समान है ! ऐ पुजारिन, तेरा रूप अनुपम है !

तुम फूलों से भरी थाली हाथ में लिये हो और इस अदा में बड़ी मोहक

लगती हो। मदमाता यौवन है तेरा और मस्तानी अदा है। तेरी आँखें तो नीचे झुकी हुई हैं, लेकिन तिरछी निगाहों से इधर-उधर भी देखती रहती हैं। तू अपनी भावना में लीन मस्त पुजारिन है और प्रियतम प्रभु के प्रेम में योगिनी बन गयी है। तेरी चाल मन को मस्त और मतवाला बना देनेवाली है और पतली कमर तो जैसे फूलों से लदी डाली है जो बराबर हिलती रहती है। तेरा हृदय अच्छाइयों की वह मंजिल है जो लाखों मंदिरों को भी प्राप्त नहीं है। (अर्थात् तुझे देखने के बाद मंदिरों में जाने की जरूरत नहीं।) प्रेम, सौंदर्य और पवित्रता के जिन उच्च भावों का मन में उदय होता है, वे लाखों मंदिरों में भटकने पर भी नहीं हो सकती। जीवन का अस्तित्व तुझमें मानों झूम रहा है और मादकता मानों तेरी आँखों को चूम रही है। (तेरे सौंदर्य में स्वस्थ जीवन का स्पन्दन है और मादकता का स्पर्श भी।) ऐ पुजारिन, तेरा रूप किसी स्वर्गीय देवी के समान है! ऐ पुजारिन, तेरा रूप अनुपम है।

सवेरा होने से बहुत पहले ही स्नान के लिए तू गंगा के घाट पर जाती है और इस प्रकार गंगा का सम्मान बढ़ा देती है। वहाँ से जब लौटती है तब साड़ी की खुशबू के साथ ही चन्दन, जल, दूब, और सुपारी (पूजा की सामग्री) लेकर सुबह की शोभा को लज्जित करती तथा लोगों की दृष्टियों से अपने को बचाती हुई तू मंदिर को आती है। ऐ मंदिर में आनेवाली और प्रेम के फूल चढ़ानेवाली, जीवन तुझसे ही गुलजार है! सूरज भी तेरे ही कारण प्रकाशित है। ऐ पुजारिन, तेरा रूप स्वर्गीय देवी के समान है! ऐ पुजारिन, तेरा रूप अनुपम है।

हमारा एशिया

शब्दार्थ—ज़मीं = धरती, जमीन; तमद्दुन = सभ्यता; कोख = गर्भ, पेट; तहज़ीब = संस्कृति; पे = पर; सहर = प्रभात; इल्म-ओ-हिक़मत = ज्ञान और कारीगरी। बुलन्दी = ऊँचाई। ज़मज़मा = संगीत। सबक़ = पाठ। मज़्दक = ईरान का एक दार्शनिक जिसने लगभग एक हजार साल पहले 'साम्यवाद' का स्वप्न देखा था और उसे सत्य करने के प्रयत्न में शूली पर चढ़ गया। अद्ल-इन्साफ़ = न्याय। तारीख = इतिहास। मुस्तफ़ा = मानवीय दुर्गुणों से रहित, पैगम्बर। क़दीम = प्राचीन। दास्तान = कहानी। अज़ीम = महान। हसीन =

सुन्दर। फ़ैयाजी = उदारता। विर्सा = उत्तराधिकार। ताज = ताजमहल। सीकरी = फतहपुर सीकरी जहाँ बादशाह अकबर ने किला बनवाया था। अहरामे-मिश्र = मिश्र का पिरामिड। रवायात = परंपरायें। बाबुल-और-नैनवा = बाबुल और नैनवा मध्य एशिया के ऐसे स्थल हैं जहाँ मानव की प्राचीनतम सभ्यता का विकास हुआ था। फ़साहत = सुंदर वर्णनशैली। बलाग़त = उचित अवसर पर उपयुक्त बातें बोलना। इंजील = ईसाइयों का धर्मग्रंथ। हुकमराँ = शासक। तुन्द = तेज। वबाएँ = महामारियाँ। मान्चू = मंचूरिया [चीन] के निवासी। सियहफ़ाम = बिलकुल काला। गरज़ = मतलब। जवाँ = जवान। रुस्तम = ईरान का एक मशहूर योद्धा। काश्त = खेती। तेशा = पत्थर काटने का औज़ार। घनेरे = घने। सब्ज = हरी। साया = छाया। अवाम = जनता। परचम = झण्डा। सरनिगुँ = नीचे झुके हुए। तख्त = सिंहासन। ताज = मुकुट। भूक = भूख। कत्ल = हत्या। हवादिसे-रोजगार = रोज़गार या जीवनयापन करने की इच्छाएँ। तब्दील होकर = बदलकर, परिवर्तित होकर।

संदर्भ—अली सरदार जाफरी उर्दू के नौजवान और तरक्की-पसंद शायर हैं। भारत ही नहीं, भारत के बाहर भी उनका नाम है। इस कविता में उन्होंने एशिया की नयी और उभरती हुई चेतना को उतारने का सुन्दर प्रयत्न किया है। 'एशिया जाग उठा' नाम से जो उन्होंने एक वृहत् काव्य लिखा है, उसकी ये प्रारम्भिक पंक्तियाँ हैं। कवि एशिया की महान और शानदार ऐतिहासिक एवं साँस्कृतिक परम्परा का वर्णन करते हुए कहता है—

भावार्थ—यह एशिया की धरती सभ्यता की कोख है और संस्कृति की जन्मभूमि है—इसी धरती के गर्भ से सभ्यता का जन्म हुआ और यहीं पर संस्कृति का विकास हुआ। [इतिहास साक्षी है कि मानव-सभ्यता का विकास सबसे पहले मध्य एशिया में हुआ और वहीं से उसकी रोशनी विश्व भर में फैली।] यहाँ पर ही सूरज ने पहले-पहल अपनी आँखें खोलीं, यहाँ पर ही मानवता का प्रथम प्रभात हुआ और बर्बर जंगली युग का अंत हुआ। यहाँ से ही अगले युगों के दीपकों ने—भविष्य-निर्माता मानवों ने—ज्ञान और कौशल की ज्योति पायी। इसी ऊँचाई से वेदों ने अपने अपूर्ण संगीत सुनाये। यहाँ से ही गौतम बुद्ध हुए

थे जिन्होंने मनुष्य को बराबरी का पाठ पढ़ाया। [सभी मानव समान हैं, यह संदेश बुद्ध ने ही दिया था।] यहाँ ही महान दार्शनिक मज़्दक हुए थे जिन्होंने न्याय और प्रेम के गीत गाये थे। [मज़्दक ने ऐसे समाज की रचना का प्रयत्न किया था जिसमें सभी मनुष्य प्रेमपूर्वक समानता की जिन्दगी बिता सकें।] हमारे इतिहास की हवाएँ महात्मा ईसामसीह की वाणी सुन चुकी हैं। [ईसा की जन्मभूमि एशिया ही है।] हमारा सूरज पैगम्बर मुहम्मद [इस्लाम धर्म के प्रवर्तक] के सिर पर चमक चुका है। [संसार के सभी प्रमुख धर्मों और धर्म-प्रवर्तकों की जन्म-भूमि एशिया है, फिर हम क्यों न गर्व का अनुभव करें !]

यह धरती वह धरती है जिसने सुनहले गेहूँ के मोतियों को जन्म दिया है। [यहाँ की मिट्टी पर गेहूँ की सुनहली फसल उपजती रही है जिसके दाने मोतियों के समान चमकते हैं।] यह मिट्टी इतनी पुरानी है जितनी पुरानी मानव की कहानियाँ हैं ! यह इतनी महान है जितनी हिमालय के शिखरों की ऊँचाइयाँ हैं। [एशिया सबसे प्राचीन है और सबसे महान है। मानव का इतिहास एशिया से शुरू होता है और इसकी महानता की तुलना भी किससे की जाए सिवाय हिमालय के ! और हिमालय भी तो हमारा ही पर्वत है—दुनिया का सबसे ऊँचा पर्वत !] यह धरती इतनी सुन्दर है जितनी कि अजन्ता-गुहा की दीवारों पर अंकित अप्सराओं के चित्र हैं। यह अपनी उदारता में नील और गंगा नदियों से कम नहीं है ! इस भूमि की गोद बच्चों से, फूलों से और फलों से भरी हुई है। [संसार का सबसे अधिक गुलजार आबाद हिस्सा है—एशिया महादेश !] हमारा उत्तराधिकार 'मोहन-जो-दाड़ो' से लेकर चीन की वृहत् दीवार तक है। [हजारों साल पहले मोहन-जो-दाड़ो में सभ्यता विकसित हो रही थी जब कि संसार के अन्य भागों के निवासी असभ्य अवस्था में थे। चीन की वह दो हजार मील लम्बी दीवार भी एशिया की भूमि पर ही है जो आज भी दुनिया को हैरत में डाले हुए है।] हमारे इतिहास का फैलाव ताजमहल और फतहपुर सीकरी से लेकर मिस्र के पिरामिड तक है। परम्पराओं के खज़ाने से हमें बाबुल और नैंनवाँ मिले हैं। (वेबिलोन में मानव की आदिम सभ्यता के अवशेष मिलते हैं। बाबुल उसी को कहते हैं। ननवाँ भी एक स्थल

का नाम है।) सुन्दर वर्णन-शैलियों ने हमारे बचपन के ओठ चूमें और अच्छी तरह बोलने की कलाओं ने बड़ी सुन्दर लोरियाँ सुनायीं (अर्थात् सभ्यता के शैशव काल में ही एशिया में सुन्दर सुन्दर काव्य रचे गये और यहाँ के तत्त्ववेत्ताओं तथा दार्शनिकों ने अपनी विचारपूर्ण वाणी से समस्त विश्व को प्रभावित किया।) जबान खोलते ही हमारे वेद, इंजील और कुरान गूँज उठे। हमारी कल्पना की उड़ान आकाश की उस ऊँचाई को छू चुकी है जहाँ पर 'फिरदौसी', 'सादी' 'निजामी' 'उमर खैयाम' और 'हाफिज' जैसे कविगण चाँद और सूरज की तरह चमक रहे हैं; वह ऊँचाइयाँ जिन पर बाल्मिकि, तुलसीदास, कबीर और सूरदास शासन करते हैं। उन्हीं बहारों की बिजलियाँ हैं जो महाकवि इकबाल और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के गीतों में गूँजती हैं। वे बिजलियाँ ही आज 'नाजिम की कविता में कौंध उठी हैं और 'लौह-सों' की कहानियों की रूप में चमक रही हैं। तात्पर्य यह है कि एशिया में महान कवियों और साहित्यस्रष्टाओं की एक लम्बी और सुन्दर परम्परा रही है।

एशिया पर आफतें भी कम नहीं आयीं—हमारे सिर पर से हजारों सालों के तेज तूफान गुजर चुके हैं। मुसीबतों की हवायें आयीं और जुल्म तथा अत्याचार की आँधियाँ भी। न जाने कितने सिकन्दर यहाँ की भूमि पर आक्रमणकारी के रूप में आये और महामारी की भाँति असंख्य जनता की मृत्यु के कारण बने। चंगेज खाँ और तेमूरलंग जैसे हजारों बर्बर शासक और असंख्य मंचूरिया के लुटेरों ने सदियों तक लूट-पाट को जारी रखा और रक्त की नदियाँ बहाते रहे। कहीं से रावण आया तो कहीं से जोहाक अपने बालों में साँप गूँथे आया। (रावण की बातें तो सभी जानते हैं, किन्तु जोहाक भी बड़ा क्रूर अत्त्याचारी था। वह ईरान का बादशाह था)। कहीं से हेस्टिंग्ज और क्लाईव जैसे चालबाज गुलामी का फंदा लेकर यहाँ आये, कहीं से जुल्मी डायर (जिसने जालियाँवाला बाग में निहत्थी भीड़ पर नृशंसतापूर्वक गोलियाँ चलवायी थीं) आया तो कहीं से वेवल जैसा धूर्त (अंग्रेज गवर्नर जनरल) आया। कोई काला था तो कोई भूरा, कोई श्वेत था तो कोई पीला। (एशिया को तबाह करनेवाले काले-गोरे आदि सभी वर्णों के लोग थे। मतलब यह कि हर एक रंग के खूँखार भेड़िये ने

यहाँ पर हमले किये, मगर यह अनमोल भूमि इतना होने पर भी सुन्दर और जवान रही है। हमारे रुस्तम और अर्जुन मरे नहीं हैं, वे जंगलों और पहाड़ियों में भूमि पर खेती कर रहे हैं अर्थात् रुस्तम और अर्जुन जैसे महान योद्धाओं जैसे शक्तिशाली लोग अब भी यहाँ हैं जो दिन-रात कड़ी मिहनत कर धरती पर फसल उगाते रहते हैं। हमारे फरहाद अबभी तेशे चला चलाकर पर्वतों को काट रहे हैं। जवान लैला, सुन्दर शीरीं और कुँवारी हीर जैसी ललनाएँ अब भी यहाँ गा रही हैं और घने वृक्षों की हरी छाया में अनगिनत शकुन्तलाएँ नृत्य कर कर रही हैं। हम एशिया के लोग सूर्य की तरह कभी डूबे हैं और फिर उगे हैं। (उत्थान-पतन के बीच आगे बढ़ते रहे हैं।) दुःखों की अग्नि में तपकर हम निखर उठे हैं। हमारी आँखों के सामने कितनी ही काली शताब्दियों ने दम तोड़े हैं—कितने ही अंधकारपूर्ण युगों का अन्त होते हमने देखा है। न जाने कितने ऊँचे झंडे हमारी नजरों के सामने नीचे झुक गये हैं—कितनों को ही हमने विजय ध्वजा उड़ाते देखा और फिर उन्हें पराजित होते भी देखा। कितने ही सिंहासनों को उलटते हुए हमने देखा है। कितने ही मुकुटों का धाराशायी होते देखा है। (कितने ही विशाल राज्यों को मिटते देखा है और कितने ही महान राजाओं का पतन भी होते देखा है।) हमारी छाती पर से असंख्य महारथियों के रथों के पहिए गुजर चुके हैं, विजय की लिप्सा लेकर सब हमारी छाती को रौंदते हे। मगर दुर्भिक्ष, कत्लेआम और गरीबी के अंधकार में भी हम जीवनयापन करके इच्छाओं के दहकते अंगारों के रूप में हम असंख्य जन्म ले चुके हैं। हम अपनी धरती के गर्भ में बीज की भाँति दब गये थे, मगर नयी सुबह की हवा में बसंत की कोयल बनकर बाहर अंकुरित हो उठे हैं। (एशिया में अब अंधकार का युग नहीं रहा, वह अब जाग उठा है। नवयुग के नवप्रभात का उदय हो चुका है। एशिया अब पुनः अपना खोया गौरव प्राप्त करके रहेगा।)

वतन की आजादी

शब्दार्थ :—ख़ूने-दहक़ाँ = किसानों का खून । ख़ूने-शहीदाँ=शहीदों का खून । मुमकिन=संभव । खुश्क हो जाएं=सूख जाए । दोज़ख़=नरक । रवानी=

गतिशीलता। तर्क करना=छोड़ देना। बर्क़=बिजली। ज़मीने-पाक=पवित्र धरती। नापाकियाँ=गंदगियाँ। शमए-आज़ादी=स्वतंत्रता का दीपक। गुल होना=बुझ जाना। नौजवाँ=नौजवान। अलमबरदारे-आजादी=आजादी का झंडा उठानेवाले। पासबाँ=पहरेदार। तेग़े-जौहरदारे-आज़ादी=आज़ादी की रक्षा के लिए तलवार का जौहर दिखानेवाले। पाकीज़ा=पवित्र। शरारा=चिनगारी। जीस्त=ज़िन्दगी। शमए-ज़िन्दगानी=ज़िन्दगी का दीपक। गेती=संसार, दुनियाँ। लर्ज़ाबर-अन्दाज़=कंपायमान, कंपित। अमल=समय। शोर-महशर=प्रलय का कोलाहल। ख़ुर्शीदे-ख़ावर=उगता हुआ सूरज। नौजवाने-हिन्द=हिन्दुस्तान के नौजवान। तक़दीर=भाग्य। जिन्दाँ=जेल। मुजाहिद=सत्य के लिए लड़नेवाले।

संदर्भ :—मख़दुम मुहिउद्दीन भी उर्दू के तरक्की-पसंद शायरों में एक हैं। अपने देश को आप बेहद प्यार करते हैं। आज़ादी मिलने के बाद आप देशप्रेम के जज़्बात को अपने दिल के अन्दर नहीं रोक सके और उन्हें अपनी इस कविता में सुन्दर ढ़ंग से व्यक्त कर दिया। आप कहते हैं—

शब्दार्थ :—सब मिलकर हिन्दुस्तान की जय का उद्घोष करो। तुम्हें खून से सींचे हुए इस हिन्दुस्तानरूपी रंगीन बाग़ की कसम है। तुम्हें उन कृषकों के रक्त की कसम है (जिन्होंने अपने रक्त को सुखाकर फसल पैदा की है और हमें भूखों मरने से बचाया है।) तुम्हें कसम है उन शहीदों के रक्त की जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। यह संभव है कि दुनियाँ के सारे सागर सूखकर जलहीन हो जाएँ, यह भी संभव है कि नदियाँ बहते बहते थक कर सो जाएँ अर्थात जल के अभाव में गतिहीन हो जाएँ। नरक की भीषण अग्नि अपनी जलाने की ताकत खो बैठे या ठंडी हो जाए, यह संभव हो सकता है। विद्युत की रेखाएँ अपने चंचल प्रवाह को छोड़ दे यह भी संभव है, किंतु यह पवित्र धरती अब बुराइयों से भरी गंदगियों को अपने ऊपर नहीं ढो सकती। देश की स्वतंत्रता का जो दीपक जला है, वह अब कभी बुझ नहीं सकता है। सब मिल कर हिन्दुस्तान की जय का उद्घोष करो।

वे हिन्दुस्तान के नौजवान हैं अर्थात देश की स्वतंत्रता का झंडा उठानेवाले हैं। देश के पहरेदार या रक्षक वे ही हैं, आजादी की रक्षा के लिए तलवार का जौहर दिखाने की शक्ति उनमें है। वे ऐसी पवित्र चिनगारियों के समान हैं जिन्हें बिजलियों ने धोया हो। (आग के समान पवित्र तेजस्वी और बिजली की भाँति चंचल स्फूर्तिमय हैं वे) वे ऐसे अंगार हैं जिसमें जीवन खुद आकर समा गया है। जिन्दगी रूपी ऐसे दीपक हैं वे जो आँधियों के बीच पले हैं। या वे ऐसी नाव के समान हैं जो तूफानों की मदद से ही अपने ठिकाने पर पहुँच जाता है। ऐसी ठोकर हैं वे जिससे पृथ्वी भी कंपित होती रहती है। समय की नाव जिस धारा पर बहती रहती है, वही हैं वे। (अर्थात युग को बदल डालने की क्षमता उनमें है।) लोगों के हृदय में जो आहें छिपी थीं वे ही प्रलयकालीन कोलाहल बनकर फूट निकलीं (जिसने क्रांति और विद्रोह का रूप धारण कर लिया अंग्रेजी शासन के प्रति)। लोगों के दिलों की छिपी चिनगारियाँ ही अब (स्वतंत्रता का) उदयकालीन सूर्य बनकर चमक उठी हैं। जो गुलाम हिन्दुस्तान एक कैदखाना-सा बन गया था उसकी किस्मत को यहाँ के नौजवानों ने बदल दिया। सत्य के लिए लड़नेवाले देशभक्तों की दृष्टि से जेल की जंजीरें कट गयीं—हम आजाद हो गये। सब मिलकर हिन्दुस्तान के जय का उद्घोष करो।

उर्दू पद्य-भाग समाप्त

———